Samasya Aur Samadhan
By Mahopadhyay Shri Chandra Prabh Sagar,
Published By Shri Jeetyashashree Jain Prakashan
C/o Prakash 9C, Esplanade Row East, Calcutta-69
1986.

श्रीमती कस्तूरी बाई, धर्मपत्नी श्री सुखलालजी मालू
तथा श्री आशकरणजी मालू एवं श्री प्रेमचन्द जी मालू,
खड़गपुर की ओर से सप्रेम भेंट।

सन् १९८६

प्रकाशन :
श्री जीतयशाश्री जैन प्रकाशन
द्वारा प्रकाश
९ सी, एस्प्लानेड रो (ईस्ट)
कलकत्ता-७०००६९

संकलन :
मुनि ललितप्रभसागर

आवरण-चित्रण :
शान्ति आर्ट्स, गंटूर

आवरण-मुद्रण :
एंटार्कटिका, ऑफसेट कलकत्ता-९

ग्रन्थ-मुद्रण :
एसकेज,
८, शोभाराम वैशाख स्ट्रीट,
कलकत्ता-७

परम पूज्य आचार्यप्रवर श्रीमज्जिनकान्तिसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब के शिष्य-रत्न परमादरणीय शासन-प्रभावक मुनिराज श्रीमहिमाप्रभसागरजी महाराज साहब, सिद्धात-प्रभाकर विद्वद्वर्य मुनि श्री ललितप्रभसागरजी महाराज साहब एव व्याख्यान-वाचस्पति महोपाध्याय श्री चन्द्रप्रभसागरजी महाराज साहब का सन् १९८५ का गत चातुर्मास कलकत्ता मे अनुपम एवं अभूतपूर्व हुआ। प्रवचन, पूजा प्रभावना, तपश्चर्या, स्वधार्मिक वात्सल्य, मन्दिर-निर्माण, अनाथ-सेवा-साहित्य-प्रकाशन आदि का विशेष ठाठ लगा रहा।

कलकत्ता मे पूजनीय प्रवचन-प्रभाकर, महोपाध्याय श्री चन्द्रप्रभसागरजी महाराज साहब का तात्त्विक विषयो पर प्रभावशाली प्रवचन होता था। उनके प्रवचनो ने कलकत्ता-सघ को अपरिमित प्रभावित किया। उनके प्रवचनो को सुनने के लिये भारी भीड एकत्रित होती थी। इसका मुख्य कारण यह था कि लोग उनके प्रवचनो से रसाभिभूत हो जाते थे। यद्यपि उन्होने कलकत्ता से विहार कर दिया, किन्तु उनके प्रवचनो का प्रभाव एव सिक्का अभी तक कलकत्तावासियो पर जमा हुआ है, जो कभी नही मिट सकता। वास्तव मे, पूज्य मुनिश्री के प्रवचन सूक्ष्मता रोचकता और विद्वता के त्रिविध तत्त्वो से समन्वित होते थे। डा० प्रभाकर माचवे, डॉ० प्रभात शास्त्री, प्रो० कल्याणमलजी लोढा, भवरलालजी नाहटा, कविवर कन्हैयालालजी सेठिया जैसे मूर्धन्य विद्वानो ने कलकत्ता मे मुनिश्री के प्रवचन-श्रवणकर उनकी प्रवचन-शैली की मुक्त-कण्ठ से प्रशसा की।

पूज्य मुनिश्री के प्रवचन कलकत्ता मे लगभग साढे पाँच महीने तक लगातार हुए। उनके प्रवचन अधिकाशत पी० २५ कलाकार स्ट्रीट स्थित श्री जैन भवन मे हुए। लगभग ४०-४५ सार्वजनिक प्रवचन हुए, जो कलकत्ता के भिन्न-भिन्न स्थानो पर हुए थे। उनके कई प्रवचनो की वीडियो फिल्म तैयार की गई एव पूरे चातुर्मास मे हुए प्रत्येक प्रवचन की कैसेट् भी तैयार की गई।

पूज्य मुनिश्री के प्रवचनामृत का लाभ प्रत्येक सज्जन-जिज्ञासु प्राप्त कर सकें, इसी उद्देश्य से हम उनके प्रवचनो की एक पुस्तक प्रकाशित कर रहे हैं, जो कि कलकत्ता-चातुर्मास की मधुरतम स्मृति है। प्रस्तुत पुस्तक मे प्रारम्भिक सात प्रवचनो का

प्रकाशन हो रहा है। ये प्रवचन वस्तुत. जिज्ञासु-श्रोताजनो द्वारा किये गए प्रश्नो के विस्तृत उत्तर हैं। समस्याओ के यथोचित मार्मिक समाधान हैं।

इन प्रवचनो का विदुषी श्रीमती राजकुमारीजी वेगाणी ने पठन-संशोधन कर आशुलिपिक द्वारा रही त्रुटियो को दूर करने की कृपा की है। पुस्तक के सकलन तथा सयोजन मे पू० मुनिवर श्री ललितप्रभसागर जी म० सा० का सहयोग एव सहकार उल्लेखनीय है।

वयोवृद्ध साहित्यकार विद्वद्वर्य श्री भँवरलालजी साहव नाहटा ने शुद्ध मुद्रण-शोधन किया है। वस्तुतः सवके पारस्परिक सहयोग से ही पुस्तक मूर्तरूप पा सकी है। अन्त मे, हम सव पूज्य महोपाध्याय श्री चन्द्रप्रभसागर जी महाराज साहव के प्रति अपनी वन्दनाज्ञापित करते हैं, जिनकी अमृत-वाणी ने हम सवको लाभान्वित एव कृतार्थ किया।

जय जिनेन्द्र।

आपका

☐ **प्रकाशचन्द दफ्तरी**

कृते, श्री जीतयशाश्री जैन प्रकाशन

कलकत्ता



परम पूज्य शासन-प्रभावक मुनिराज
श्री महिमाप्रभसागर जी महाराज

महावीर समाधान के वातायन में

प्रवचन-स्थल :
जैनभवन, कलकत्ता

प्रवचन-समय :
१ जुलाई १९८५

प्रश्न है भगवान महावीर ने अपने युग की तत्कालीन समस्याओ का समाधान किस रूप मे प्रस्तुत किया और उन्हे क्या सफलता मिली ? उस युग के सन्दर्भ मे उसका क्या नैतिक मूल्य हो सकता है ?

प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। भगवान महावीर को गहराई से समझना होगा— समाधान के वातायन मे, अन्यथा चूक जायेंगे। कारण, स्वयं महावीर के समय मे भी वहुत लोग चूक गये थे। आप लोग भी चूक सकते हैं। मैं जो इस प्रश्न का समाधान दूगा, फिर तो उसको समझना भी एक समस्या वन जायेगी। जो चूके, वे नासमझ जिन्होंने समझा, उन्होने जीवन की पहेलियो का हल पा लिया, समस्याओ का समाधान हासिल कर लिया।

जो समस्याएँ महावीर के युग मे थी, वैसी ही नयी नयी समस्याएँ आज भी उभरी हुई हैं। हर युग नया है। हर युग की अपनी समस्याएँ होती हैं। इसलिए हरेक समस्या का समाधान उस युग के सन्दर्भ मे ही हो सकता है। किन्तु अनेक समस्याएँ ऐसी भी होती हैं, जिनका सम्वन्ध युग से उतना नही, जितना उस युग मे जीनेवाले प्राणियो से, उनके आचार-विचार से होता है। ससार समस्याओ का घर है, दलदल है। और, महावीर उस दलदल की गहराई से समीक्षा करने वाले कमल हैं। महावीर यानी जटिल से जटिलतम समस्याओ के समाधानकर्त्ता।

समाधान वाद मे, पहले समस्या को समझे। समस्या को समझे विना समाधान की ओर वढ़ेंगे तो अन्त मे फिर पूछेंगे कि भगवान महावीर समस्याकर्त्ता थे या समाधान कर्त्ता। सारी रामायण सुनने के वाद लोग पूछ वैठते हैं कि सीता का हरण राम ने किया था या रावण ने ?

मैंने सुना है कि एक व्यक्ति के दो पुत्रियाँ थी। एक का विवाह कुम्भकार के घर हुआ और दूसरी का विवाह माली के यहा। एक वार उस व्यक्ति की इच्छा हुई कि चलो दोनो पुत्रियो से मिल आएँ और उनकी कोई आवश्यकता हो तो उसे पूरा कर दें। वह चला। पहले वह कुम्हार के यहाँ गया। दो दिन रहा वहाँ। रवाना होते समय उसने पुत्री मे पूछा कि वोलो विटिया ! तुम्हे क्या जरूरत है ? पुत्री ने कहा, पापाजी ! और तो सव ठीक है, कोई कमी नही है। वस, इन्द्र भगवान से यही प्रार्थना है कि यह वादलो की झिरमिर समाप्त हो जाए तो ये मिट्टी के वर्तन और घडे पका लूँ। उस व्यक्ति ने कहा कि अच्छा, मैं भी प्रार्थना करूँगा। अव वह व्यक्ति कुछ दिनो के वाद अपनी दूसरी पुत्री के यहाँ गया। वहाँ भी उसने लौटते समय पुत्री से पूछा कि वोलो, विटिया ! तुम्हें क्या जरूरत है ? उसने कहा पापाजी ! और तो सव ठीक है, मगर इन्द्र भगवान मे यही प्रार्थना है कि वह जल वृष्टि करे। क्योंकि पेड़-पौधे सव सूज रहे हैं। आप भी प्रभु से यही प्रार्थना करें।

वह व्यक्ति चकित हुआ। उसने कहा कि तेरी वहिन की समस्या है कि जलवृष्टि रुक नही रही है, और तुम्हारी समस्या है कि जलवृष्टि नही हो रही है। अव मेरे लिए यह समस्या उपस्थित हो गयी है कि मैं इन्द्र को किसके लिए प्रार्थना करूँ जल-वृष्टि की या वृष्टि-अवरोध की ? क्योकि मेरे लिए तो तुम दोनो समान हो—एक तराजू के दो पलडे। मैं नही जानता कि इस समस्या का समाधान स्वय देवेन्द्र भी कैसे करेंगे क्योकि उनके पास एक साथ दो परस्पर विरोधी प्रार्थनाएँ पहुच रही हैं ?

इसे कहते हैं समस्या। समस्या को सुलझाना ही समाधान है।

भगवान् महावीर का युग समस्याओ का मकडी-जाल था। जनता उस जाल मे उलझी हुई थी। वह मुक्ति-वोध पाने के लिए मार्ग ढू ढ रही थी, मगर वह जैसे जैसे मार्ग खोजती वैसे-वैसे और उलझ जाती—भूल-भूलैया के अन्ध गलियारो मे। वास्तव मे, उन्हें जरूरत थी एक सशक्त और प्रवुद्ध मार्गदर्शक की। भटके को राही का सहारा डूवते को तिनके का सहारा। सौभाग्य ही समझिये, जनभाग्य का नया सूर्योदय कि महावीर मिल गये जनता को। वह महावीर जिसने युग की पीड़ा को समझा, जनता की व्याकुलता को महसूस किया। इसीलिये उन्होने मकडी-जाल मे फँसी जनता को मुक्त करने के लिए और पथच्युत हो रहे आचार तथा दर्शन को सही-सलामत रखने के लिए अथक् प्रयास किया; अन्यथा उस साधक को क्या जरूरत जो साधना के प्रारम्भ से लेकर साध्य-सिद्धि तक विलकुल मूक रहा, निर्वस्त्र रहा, समाज से असयुक्त वना रहा।

विश्व-मन्दिर का जीर्णोद्धार करने के लिए महावीर ने अन्तत. पूरा प्रयास किया। महावीर तो वह देहरी का दिया है, जिसने भीतर और वाहर दोनो को आलोकित किया। जीवन की समस्या और जीवनेतर समस्याओ का समाधान देने वाला ही वास्तव मे विश्व का, जन-जन का भगवान् है, अखिल ब्रह्माण्ड का अनुशास्ता है।

महावीर ने एक-एक समस्या को खोजा, युग के और जग के हर कोने-कातर मे जाकर। उन समस्याओ मे वे जिये। विश्व की समस्याओ को अपनी समस्या माना और उनके लिए समाधान खोजे। खोज उपलव्धि की प्रक्रिया है। 'जिन खोजा, तिन पाइयाँ'। पहले समस्या, फिर समाधान। पहले प्रश्न, फिर उत्तर। पहले अर्जुन, फिर कृष्ण। अर्जुन समस्या है और कृष्ण उस समस्या के समाधानकर्त्ता। कृष्ण अर्जुन के भीतर है—दूध मे मक्खन की तरह। गीता कृष्ण की अभिव्यक्ति है। समाधान की फलश्रुति गीता है।

महावीर समाधान-गीता के प्रणेता हैं उनका हर समाधान अपने-आप मे गीता-स्वरूप है। कृष्ण ने एक अर्जुन की समस्या को समाधान दिया और महावीर के लिये हर इन्सान अर्जुन था। इसीलिए जैनो के पास गीता जैसे अनेक ग्रन्थ हैं। अव

प्रतिनिधि ग्रन्थ भी वन गया है 'समणसुत्त', जो महावीर स्वामी की अभिव्यक्ति और जैनो की महागीता है।

महावीर ने गीताए कही, लेकिन विशिष्ट ढग से। महावीर पहले अर्जुन बने और बाद मे उस अर्जुन के भीतर सुषुप्त कृष्ण को जागृत किया। समस्या के भीतर ही समाधान खोजे। बीज मे ही वृक्ष का भविष्य देखा। क्योकि बाहर का कृष्ण और बाहरी समाधान मात्र एक ऊपरी औपचारिकता है, राख पर लीपा-पोती करने जैसा समस्याओ के सनातन समाधान की गीता महावीर जैसे कृष्ण ही दे सकते हैं। कारण, महावीर जीवन की अनुभूतियो को ही अभिव्यक्ति देना पसन्द करते हैं। इसीलिए वे समाधान आकर्षक सम्यक् तथा चिरस्थायी प्रकाश-स्तम्भ की तरह वने। वरना, महावीर के पास दुनिया आकर्षित होकर दौडी-दौडी नही आती। क्योकि उनके पास आकर्षण का कोई साधन नही था। भला, जिसने अपने पास शरीर-ढाकने के लिए भी वस्त्र का टुकडा नही रखा, वह दुनिया को आकर्षित करने के लिए अपने पास क्या रखता? न कोई आडम्बर, न कोई जादू, न कोई चमत्कार, वस, एक सीधा सादा निस्पृह साधक का जीवन है महावीर। आचाराग सूत्र मे मैंने महावीर का जीवन इसी ढग का पाया है। अतिशयोक्ति परवर्ती ग्रन्थो की देन है।

सत्यत महावीर स्वामी ने जो समस्याओ के समाधान दिये वे ही जनता को उनके प्रति आकर्षित करने मे सक्षम हुए। जनता को वह प्राप्ति हुई, जिसकी उसे आवश्यकता थी। सचमुच, महावीर ने फिसलते विश्व-के अर्जुन को सम्हालकर उसे उसका कर्त्तव्य-बोध कराया। सो रहे जग को जगा दिया। सुषुप्ति जागृति मे बदल गयी। स्वप्न की अन्ध गलियां नष्ट हो गई। चारो ओर राजमार्ग, प्रशस्त पथ दिखाई देने लगा।

समस्या मे समाधान की खोज परम जागृत, महामनीषी और महाजीवन्त पुरुष ही कर सकते हैं। यह उनकी आत्मकल्याण बनाम लोककल्याण की साधना है। पीडा मे परमात्मा की खोज करने के समान है। राधा, मीरा और महादेवी इसी की साधिकाए कहलाती हैं। भगवान् महावीर का समाधान का फार्मूला इसी का रूप है। समस्या में समाधान की खोज बडा मनोवैज्ञानिक कार्य है।

महावीर के युग की सबसे बडी समस्या यह थी कि उस समय अनेक प्रकार के आचार और दर्शन अपने-अपने तात्त्विक आधारो पर चल रहे थे। वे अपने एकागी दृष्टि-कोण के द्वारा ही अपने आचार-पक्ष और विचार-पक्ष का प्रतिपादन एवम् परिपालन करते थे। महावीर स्वामी ने उन विभिन्न तात्त्विक आधारो का समन्वय किया। उन्होंने जिन-जिन समस्याओ का समाधान किया, उनमे यह समाधान सबसे ज्यादा उत्कृष्ट है।

महावीर के युग मे मुख्यत. चार प्रकार के आचार-दर्शन प्रचलित थे। एक है क्रियावादी, जो आचरण को ही सब कुछ समझते थे। सच्चरित्र और सदाचार ही

उनके आचार और दर्शन का मूल हेतु था। क्रियाकाण्ड की क्रियावादियो मे अधिकता थी। दूसरी परम्परा अक्रियावादियो की थी। अक्रियावादी आत्मा को कूटस्थ एवं अकर्त्ता रूप मे स्वीकार करते थे। अक्रियावादियो का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ज्ञानवाद था। इसलिए अक्रियावाद को ज्ञानवाद भी कहा जाता है। क्रियावादी जहाँ आचरण के द्वारा अपने आचार-दर्शन का महल खडा करते थे, तो अक्रियावादी ज्ञान के द्वारा। उस समय जो तीसरी परम्परा थी, वह थी अज्ञानवादियो की। अज्ञानवादी पारलौकिक आधारो पर नैतिक प्रत्ययो को अज्ञेय के रूप मे स्वीकार करते थे। वे जिन प्रत्ययों को स्वीकार करते थे, उन्हे भी अज्ञेय कहते थे। उनकी यह नैतिक अज्ञेयता रहस्यवाद और सदेहवाद के रूप मे विभाजित थी। चौथी परम्परा थी विनयवाद की। विनयवाद को भक्ति-मार्ग का ही अपर नाम समझिये। भक्ति-मार्ग का आगे जाकर जो परम विकास हुआ, उसका मूल स्रोत विनयवाद ही है। क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी मुख्य रूप से यही चार धारायें प्रचलित थी। सूत्रकृताङ्ग सूत्र आदि ग्रन्थो मे इन परम्पराओ का वर्णन मिलता है।

भगवान् महावीर ने बडा जबर्दस्त समन्वय किया था, अपने आचार और दर्शन मे। उन्होंने क्रिया, ज्ञान, भक्ति, और रहस्य—सबका समन्वय करके साधना-मार्ग का एक प्रशस्त मार्ग बनाया। उन्होंने जो साधना का मार्ग बताया, वहाँ पर ज्ञान, क्रिया भक्ति अथवा श्रद्धा और रहस्य-सभी पगडण्डियाँ आकर मिल गई। सभी नदियों का पवित्र सगम हो गया। नहरें महानद मे लीन हो गई। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के रूप मे महावीर ने इनका समन्वय किया था। उनकी आवाज मुझे आज भी सुनाई पडती है कि दसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि। सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्ष का मार्ग है। सबको इनका सेवन करना चाहिये। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग। ये तीनो अन्योन्याश्रित हैं। तीनो की समवेत साधना ही मोक्षमार्ग है। भगवान् महावीर ने और सबको तो सम्मिलित कर दिया लेकिन संदेहवाद को सम्मिलित नही किया। सदेहवाद तो महावीर स्वामी को स्वीकार ही नही था। सन्देह यानी यह क्या है—रस्सी या सर्प आदमी या ठूँठ? डांवाडोल स्थिति है यह। धोबी का गधा न घर का न घाट का। सन्देह न तो पूरे ज्ञान की स्थिति है, न ही पूरे अज्ञान की स्थिति। अत सन्देहवाद को महावीर स्वामी ने समन्वय के सूत्र मे पिरोना अच्छा नही समझा। यद्यपि जैनो के कुछेक दार्शनिक ग्रन्थो मे सन्देह को स्थान मिला है, किन्तु उसे अच्छे रूप मे स्वीकार नही किया है। सन्देहवाद जैसा कोई स्वतन्त्रवाद या पक्ष नही है।

महावीर के युग मे जो अन्य समस्याएँ थी, उनमे सबसे बडी समस्या का समाधान महावीर स्वामी ने अन्तर्मुखता और बहिर्मुखता के समन्वय द्वारा किया था। कुछ दर्शन बहिर्मुखता पर ज्यादा जोर देते थे, तो कुछ दर्शन अन्तर्मुखता की ओर

ज्यादा जोर देते थे। तपस्यात्मक प्रणाली के द्वारा श्रमण-परम्परा मे भी देह-दण्डन की प्रक्रिया चालू थी। केवल ब्राह्मण ही यज्ञ-याग के द्वारा वहिर्मुख कार्य नही करते थे, अपितु श्रमण-परम्परा मे भी देह-दण्डन आदि तपस्यामूलक, शरीर को कृष करने की प्रणालियाँ प्रचलित थी। उनमे केवल वहिर्गमन ही था, अन्तर्गमन नही था। शायद इसीलिए ही पार्श्वनाथ ने वहिर्मुखता का विरोध करके अन्तर्मुखता के लिए प्रेरणा दी वहिर्मुखता की अतिवादिता को पहुँचे हुए कमठ तापस आदि के प्रसगो एव उनके साथ हुए वार्तालाप से यह वात समझी जा सकती है। लेकिन पार्श्वनाथ अन्ततः स्वय अन्तर्मृखता की इतनी अतिवादिता मे पहुच गये कि बहिर्मुखता को तिलाजलि ही दे दी। जहाँ ब्राह्मण-वर्ग यज्ञ-याग के द्वारा वाह्य-पक्ष पर ज्यादा जोर देते थे, वही पर श्रमण-परम्परा पर भी देह-दण्डन आदि के द्वारा वाह्य-पक्ष पर ही जोर देती थी। पार्श्वनाथ ने अन्तर्मुखता के लिए वहुत प्रेरणा दी। इस सम्वन्ध मे पार्श्वनाथ पहले क्रान्तिकारी व्यक्ति हुए, जिन्होने वाह्य-पक्ष को तिलाजलि देकर आन्तरिक पक्ष के लिए उपदेश दिये। इस प्रकार क्रियाकाण्ड अध्यात्म से जुडा। क्रिया की अति उपेक्षा अधिक समय तक टिकाऊ नही रही और लोगो को सही सन्तोपजनक समाधान न मिल पाने के कारण वहिर्मुखता और अधिक वढ गई।

महावीर के युग में वाह्य-पक्ष इतना अधिक प्रवल था, यज्ञ-याग, पशुवध, पुरोहितवाद—ये सव इतने अधिक हो गये थे, वाहरी साधना इतनी ज्यादा मजवूत हो गयी थी कि पार्श्वनाथ द्वारा प्रेरित अन्तर्मुखता का सिद्धात गौण ही वन गया था। भगवान् महावीर ने समस्या का जो समाधान किया, उसमें वाह्य पक्ष को भी उतना ही महत्त्व दिया, जितना अन्तर्पक्ष को महत्त्व दिया था। इसी को व्यवहार-नय और निश्चय-नय कह दीजिये। उन्होने क्रिया पर जितना ज्यादा जोर दिया उतना ही ज्यादा जोर ज्ञान और दृष्टि पर दिया था। जितना वल उन्होने दृष्टि और ज्ञान पक्ष पर दिया, उतना ही वल उन्होने क्रिया पर भी दिया। वस्तुत अन्त. और वाह्य दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। भगवान् महावीर का एक वडा महत्त्वपूर्ण वचन है।

हयं नाण किया होण, हया अण्णाणओ किया।
पासतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो य अन्धओ॥

यह गाथा 'समणसुत्त' की है समाधान के सूत्रो में यह गाथा वडी कीमती है, कोहीनूर हीरा। इसकी आगे वाली गाथा भी इसके अधूरेपन को पूरा करती है कि—

सजोअ सिद्धिइ फल वयति, न हु एगचक्केण रहो पयाइ।
अन्धो य पंगू य वणे समिच्चा, ते सपउत्ता नगर पविट्ठा॥

इन गाथाओ का मतलव यह हुआ कि क्रियाहीन ज्ञान निरर्थक है और अज्ञानियो की क्रिया व्यर्थ है। ठीक वैसे ही, जैसे पगु आदमी वन में लगी आग को देखता है परन्तु देखते हुए भी भागने में समर्थवान न होने के कारण जल मरता है और

अन्धा आदमी दौडता है परन्तु दौडते हुए भी देखने में सक्षम न होने से जल मरता है। इसलिए ज्ञान और क्रिया के सयोग से ही फल की प्राप्ति होती है। जैसे कि यदि अन्धा और पगु दोनो मिल जायें तो अन्धे के कन्धे पर पगु बैठकर और आग से निकल-कर बच सकते हैं।

बात यह बिल्कुल ठीक है मतलब कि एक पहिये से रथ नही चला करता। दो पहिये हो और दोनों समान। ऐसा नही कि एक पहिया तो हो सायकिल का और दूसरा पहिया हो ट्रैक्टर का। दोनो समान हो—यही समन्वय है। भगवान् महावीर ने भी अद्भुत समन्वय किया था बहिर्मुखता एव अन्तर्मुखता का। उन्होने साधना-गृह में एक ऐसा दीपक बनाया, जिसे देहली का दीपक कहते हैं जो बाहर और भीतर दोनो ओर आलोक फैला सके।

बहुत बडी-बड़ी समस्याएँ थी महावीर के सामने तीसरी समस्या थी उच्चावचता यानी ऊँच और नीच का भेदभाव। महावीर स्वामी ने मानव मात्र एक समान है—इसका उद्घोष किया। आज जो 'मानव-धर्म' के नाम से नया सम्प्रदाय पनपा है, उसका अकुरण चाहे विनोवा भावे या अन्य किसी ने किया हो, लेकिन बीजारोपण महावीर का है। खैर, विनोवा तो कहते ही थे कि मुझ पर भगवान् महावीर का गहरा प्रभाव पड़ा है। कारण, महावीर स्वामी ने पूरी मानव-जाति को एक समान बताया, चैतन्य तत्त्व यानी अस्तित्व और सत्ता की दृष्टि से।

मानव-जाति एक है।
भेद कैसे उसमे।
जाति, वर्ग, वर्ण, पथ के ?

किन्तु ऊँच और नीच, जाति का भेदभाव इतना अधिक बढ गया था कि मनुष्य यदि शूद्रकुल मे जन्मा है, लेकिन गुण उसके अच्छे हैं, फिर भी उसे शूद्र ही माना जाता था। भगवान् महावीर ने मनुष्य के कर्म और स्वभाव के द्वारा उसकी उच्चता और निम्नता का मापदण्ड स्वीकार किया, जन्मना उच्चता और नीचता का नही। कर्म से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र। महावीर के शब्दो मे—

कम्मुणा बंभणो होई, कम्मुणा होई खत्तिओ।
वइस्सो कम्मुणा होई, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

तो जो लोग, जो पण्डित, जो पुरोहित जन्म से ही मनुष्य को ऊँच और नीच मे विभक्त कर देते थे, महावीर स्वामी ने उसका उन्मूलन किया।

आज गाधीवाद मे भी यही बात है। गाधी ने जिन व्रतो को पालन करने का निर्देश दिया है, उनमे अस्पृश्यतानिवारण भी एक है। और, गाधी ने अपने सारे जीवन मे इसीका सर्वाधिक प्रचार-प्रसार किया। गाधी ने वास्तव मे महावीर के कार्य को

ही क्रियान्वित किया। इसलिए गाधी वस्तुत महावीर के दूत हैं, सन्देशवाहक हैं। ठीक वैसे ही जैसे अल्ला के पैगम्बर मुहम्मद हुए।

महावीर मानव - मुकुट हुए। खरेखर, वे वीर थे, महावीर थे, भला, जिस युग मे मानव मानव से घृणा करता हो, उस समय हर मानव के प्रति समानता, मैत्री और करुणा-दया रखने की प्रेरणा देना कितनी अनूठी बात है। यह महावीरो के ही हाथ की बात है। इसलिए महावीर भगवान् की सभा मे जहां एक ओर गौतम, अग्निभूति जैसे उत्तम ब्राह्मणकुल मे उत्पन्न व्यक्ति को साधना-मार्ग मे दीक्षित किया गया, वही पर हरिकेशबल जैसे शूद्र और आर्द्रकुमार जैसे अनार्यकुल मे उत्पन्न व्यक्ति को भी दीक्षित किया गया था। हत्यारे अर्जुन और चोर रोहणिये को भी महावीर स्वामी ने साधना-मार्ग पर ठीक वैसे ही आरूढ किया था, जैसे राजकुमार मेघकुमार और अतिमुक्तक आदि को। सचमुच,—

हर आत्मा मे परमात्मा है,
क्षुद्रों में भी ज्योति महान।
सारी मानव-जाति एक है,
उसमे कैसा भेद-वितान ?

ज्योति सबकी एक है, फिर चाहे वह मिट्टी के दिये से प्रगट हुई हो, चाहे सोने के दिये से। भीतर से सब नग्न हैं, और एक जैसे, वस्त्र तो आवरण हैं, बाहरी आरोपण हैं। इसलिए महावीर स्वामी ने जातिगत भेदभाव का पूरा निषेध किया।

न केवल जातिगत भेदभाव, अपितु आर्थिक दृष्टि से भी महावीर ने मानव मात्र को एक समान बताया। उनकी सभा मे जितना महत्त्व मगध नरेश श्रेणिक और राजा कोणिक को मिलता था, उतना ही महत्त्व पूणिया जैसे निर्धन वैश्य श्रावक को मिलता था। वहां पर गुणो की पूजा है पैसे की नही है। मगध-नरेश के आने पर यह नही कहा जाता था कि आइये ! आइये !! पधारिये !!! आगे बैठिये। और पूणिये जैसे गरीबो को यह नही कहा जाता था कि पीछे जाकर बैठो। मनुष्यमात्र एक समान है। पैसे के द्वारा, जन्मना जाति के द्वारा मानव का विभाजन नही किया जा सकता महावीर दुनिया के सबसे पहले साम्यवादी हुए। उन्होने ही साम्यवाद की सर्वप्रथम स्थापना की। साम्यवाद के प्रथम आचार्य और प्रवर्तक महावीर स्वामी हुए।

चाहे जातिगत दृष्टि से, चाहे सामाजिक दृष्टि से और चाहे आर्थिक दृष्टि से सभी दृष्टियो से महावीर ने सबको एक समान समझा। जाति तो बपौती तथा पैतृक देन है और धन चचल है। जो अमीर कल धन का गर्व कर रहा था, वही आज भीख मागता नजर आता है। और जो कल भीख माग रहा था, वह आज वैभवसम्पन्न दिखाई देता है। ऐसे उदाहरण हम अपनी आंखो के सामने रोजाना देखते हैं। किसी का जहाज डूबता है तो किसी की लॉटरी खुलती है। सुख और दुःख के व्यूह-चक्र मे

सभी आ जाते हैं। इसलिए जाति व्यक्तिगत और आत्मगत नही है और धन भी शाश्वत नही हैं। अत. इन दोनो से मानव का मूल्यांकन नही किया जा सकता।

भगवान् महावीर ने एक और जो महत्त्वपूर्ण समस्या का समाधान किया, वह था नारीजाति का उद्धार, नारी को दासता से मुक्त करना। नारी दासी थी। पुरुष के पैरो की जूती थी। बहुविवाह-प्रथा ने इसे और बढोतरी दी, आग मे घी की तरह। पुरुष की प्रधानता ने नारी-जाति को पतन के गर्त मे ढकेल दिया। कारण, 'द्वापर' मे मैंने पढा है :—

अविश्वास हा अविश्वास ही
नारी के प्रति नर का
नर के तो सौ दोष क्षमा हैं
स्वामी है वह घर का ॥

किन्तु महावीर ने अपने साधना-मार्ग मे जितना महत्त्व पुरुष को दिया, उतना ही महत्त्व नारी को भी दिया। और, बडी आस्था एव विश्वास के साथ, बुद्ध की तरह घबराये नही। और, कही कही पर तो इतनी हद हो गयी कि पुरुष से भी ज्यादा श्रेष्ठता नारी को दी गई महावीर के द्वारा। अमीर को तो हर आदमी अपने गले लगा सकता है, लेकिन जो आदमी गरीबो के आंसू पोछता है, वही आदमी करुणार्द्र महावीर है, विश्व का मसीहा है। महावीर तो नारी जाति के उद्धार के लिए इतने अधिक सकल्पशील और प्रयत्नशील बने कि उन्होने परम ज्ञान की प्राप्ति मे पहले ही इसके लिए प्रयास करना शुरू कर दिया। उन्होंने अपने साधना-काल मे इस कार्य को छोड़कर जनहित कोई काम नही किया था।

भगवान् महावीर के जीवन मे बडी हृदयस्पर्शी घटना मिलती है, चन्दनबाला की। राजकुमारी थी वह, लेकिन भाग्य की विडम्बना के कारण वेश्या के हाथ बेची जाने लगी, दासी बनी, पैरो मे बेडियां और हाथो मे हथकडियां डाली गयी, सिर मुडवा दिया गया—जिस स्त्री की ऐसी दीन हालत हो गयी हो, ऐसी चन्दनबाला जैसी नारियों का महावीर ने उत्थान किया। कोई भी नही हुआ इस तरह से जो प्राणिमात्र के उद्धार के लिए प्रयत्न करे। महावीर गांव-गांव मे भटके और गांव-गांव मे जाकर विश्व-कल्याण की प्रेरणा दी। दुनिया मे जितने भी महापुरुष हुए, उन्होने ससार की समस्याओ का समाधान खोजा, लेकिन महावीर ने एक-एक व्यक्ति की समस्याओ का समाधान खोजा। यदि एक-एक व्यक्ति की समस्याओं का समाधान हो गया तो सारे ससार की समस्याओ का समाधान स्वतः हो जायेगा। क्योंकि ससार व्यक्तियो का ही समूह है। व्यक्ति ससार की सबसे छोटी इकाई है।

महावीर स्वामी ने, उस युग की एक और जो सबसे बडी समस्या थी मानवीय परतन्त्रता की, उसका भी समाधान खोजा और उसे ईश्वरवाद से मुक्ति दिलाई।

उस युग मे जहाँ एक ओर ईश्वरवादिता की धारणा का प्रभाव था, वही दूसरी ओर कालवादी और नीतिवादी धारणायें अपने चरम विकास पर थी। मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता को खो बैठा था। उसके मन मे एक ही विचार था कि जैसे-तैसे ईश्वर को खुश किया जाये। और ईश्वर को खुश करने के लिए आया यज्ञ-याग, ब्राह्मणवाद, पुरोहितवाद। आत्मा और परमात्मा के मिलन के लिये इन बीच के दलालो को खुश करना जरूरी हो गया। मनुष्य पराधीन और परतन्त्र हो गया। वह बाह्य आचरण जरूर करता था, लेकिन भीतर से बडा आक्रान्त था। बाहर से तो पशुओ की आहुति दी जाती थी यज्ञो मे, लेकिन सचमुच स्वय मनुष्य भी भीतर मे पशु की तरह ही धधक रहा था। भगवान महावीर ने उसकी परतन्त्रता को समाप्त किया और उसे स्वतत्रता दी। अग्निशामक बनकर उसकी आग को बुझाना। दूसरी प्रचलित धारणायें, दूसरे मत जो मनुष्य की स्वतन्त्रता का अपहरण कर रहे थे, जो उनके साथ, उनकी स्वतत्रता के साथ अत्याचार हो रहा था, महावीर स्वामी ने उससे खुला विद्रोह किया और बडे जमकर। जिस युग मे ईश्वरवादिता, कालवादिता और नीतिवादिता अपने चरम रूप मे हो, उस युग मे ईश्वरवादिता, कालवादिता और नीतिवादिता का खुला विद्रोह करना भगवान महावीर जैसे निर्भीक, बहादुरो और महावीरो के ही वश की बात है। उन्होने सत्य को प्रकट किया, परतन्त्रता को समाप्त किया। मनुष्य की स्वतन्त्रता जो दूसरो ने छीन ली थी, विद्रोह करके उनको वापस दिलाई। इसीलिये महावीर स्वामी के प्रति लाखो लोग आकर्षित हुए, समर्पित हुए।

भगवान महावीर अनीश्वरवादी थे। अनीश्वरवादी भी मात्र इस दृष्टिकोण से कि उन्होंने ईश्वर का वह रूप स्वीकार नही किया, जो सृष्टि सचालन का आधार-भूत माना जाता है। सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता या नियामक कोई सर्वशक्तिमान ईश्वर है, इसे महावीर स्वीकार नही करते। उन्होंने षड्द्रव्यो के आधार पर यह लोक अनादि और अनन्त बताया। भला, उस तत्व को ईश्वर कहा भी कैसे जा सकता है, जो स्रष्टा और सहर्त्ता हो। माया से, राग द्वेष से युक्त हो। इसीलिये महावीर गीता के श्री कृष्ण की तरह यह उद्घोषणा नही करते कि 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज। अहत्वा सर्व पापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुच। यानी

कोई हो सब धर्म छोड तूं,
आ बस मेरा शरण धरे।
डर मत कौन पाप वह जिससे,
मेरे हाथों तूं न तरे॥

यानी मानवजाति ईश्वर की कठपुतली हुई। न स्वतन्त्र विचार-शक्ति, न स्वतन्त्र-संकल्प शक्ति—सब ईश्वराधीन। कर्मसिद्धात धूमिल हो गया। ईश्वरत्व बपौती हो गई। यह राजतन्त्र हुआ। महावीर गणतन्त्रवादी थे। उनका कहना था

कि हर इन्सान ईश्वर बन सकता है। प्रत्येक इन्सान अपना परम विकास कर सकता है। वीतरागता का विकास ही ईश्वरत्व का प्रकाश है। वह स्वय ही अपना नियामक और सचालक है। अपना मित्र और अपना शत्रु वह स्वय ही है। आत्म स्वतन्त्रता और 'आत्मा वै परमेश्वर' के सम्बन्ध मे महावीर का यह अद्भुत विज्ञान है।

महावीर परम स्वाभिमानी और परम स्वावलम्बी थे, गज और आकाशवत्। स्वस्थ थे वे, यानी आत्मस्थित थे। यह महावीर के अहकार की बात नही है, अपितु मानवजाति और आत्मा को महानता देने की बात है। दूसरे दार्शनिको ने भी आत्मा का अस्तित्व माना। ईश्वरवादी परम्पराएँ भी आत्मवादी ही हैं। किन्तु वे आत्मा को मुख्यता न दे सके। महावीर ने आत्मा को मुख्यता दी। इसीलिये महावीर स्वतन्त्र और सबसे बडे आत्मवादी हुए। परमात्मा तो इसी आत्मा का विकसित रूप है। अप्पा सो परमप्पा। आत्मा के स्वर हैं—

मेरा ईश्वर मेरे अन्दर, मैं ही अपना ईश्वर हू।
कर्ता, धर्ता, हर्ता अपने जग का मैं लीलाधर हू॥
शुद्ध, बुद्ध, निष्काम निरजन कालातीत सनातन हूं।
एक रूप हूं सदा-सर्वदा, ना नूतन न पुरातन हू॥

इसी तरह आत्म-तत्व या पदार्थ तत्व की ध्रुवता एव अध्रुवता के सन्दर्भ मे एक जटिल दार्शनिक समस्या थी। समस्या यह थी कि कुछ दार्शनिक प्रत्येक पदार्थ को ध्रुव मानते थे, तो कुछ दार्शनिक क्षणभगुर यानी अध्रुव। महावीर स्वामी ने हल दिया और बडा मनोवैज्ञानिक। सभी मान्यताओ को एक रूप कर दिया। इसमे उनका स्याद्वादी याने अनेकान्तवादी रूप मुखरित हुआ। सब अपने अपने मत पर अडे थे। फल यह हुआ कि ध्रुवता का सिद्धात अध्रुव-सा होने लगा और अध्रुवता का सिद्धात तो अध्रुव था ही।

भगवान् महावीर ने समाधान दिया कि सृष्टि का हर पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही प्रवर्तमान है, किसी और के द्वारा नही। कोई भी पदार्थ, फिर चाहे जड हो या चेतन अपने स्वभाव से हट नही सकता। वे सब उत्पत्ति, स्थिति और विनाश से युक्त है। उत्पादद्धिदिभगा—इसी को त्रिपदी कहते हैं। महावीर के दर्शन का महल इन्ही तीन खभो पर खडा है।

मैंने सुना है. एक ग्वाला था। वह गाँव भर की गौओ को चराता और उससे जो आय होती, उससे अपनी आजीविका चलाता था। उसकी गायो मे तीन कट्टर विद्वानो की गायें भी चरने जाती थी। वर्ष के अन्त मे ग्वाला चराई के पैसे लेने गया। सबसे पहले वेदान्ती पण्डित के पास पहुँचा और पैसे मागे तो उस वेदान्ती पण्डित ने कहा कि कौन से पैसे और किसके पैसे, जब सारी दुनिया ब्रह्मस्वरूप है। सब उसी के अश हैं। मैं भी ब्रह्मरूप, तुम भी ब्रह्मरूप, गाय भी ब्रह्मरूप। जब सब

ब्रह्मरूप हैं तो लेना-देना क्या ? ग्वाला भारी अचम्भे मे पड गया। बडी मुसीबत आ गई। गँवारू क्या समझे, मगर श्रम का फल इतना कडवा हो सकता है, यह उसने सपने मे भी नही सोचा था।

ग्वाला दूसरे पडित के पास गया वह पण्डित बौद्ध था। ग्वाले ने उससे गाय चराई के पैसे मागे। बौद्धपण्डित वेदान्ती का यार निकला। उसने कहा, पैसा ? कौन सा पैसा ? जो तुमने गाय चराई थी, वह तो चली गई। क्योकि हर वस्तु हर क्षण परिवर्तनशील है। इसलिए मेरी गाय हर क्षण नयी है। जिसे तुमने चराया, वह अब कहाँ ? इसलिए पैसा कुछ नही मिलेगा। अबकी बार तो उसकी हालत खस्ता हो गई बडा बौखला गया वह। गया अपने पुराने पडोसी के यहाँ सीधा। वह जैन था। ग्वाले ने सारी आपबीती सुनाई। तो उस जैन ने कहा-घबराने की कोई जरूरत नहीं। अभी तक तो दोनो गायें तुम्हारे ही पास है। तुम उन्हे गायें लौटाना मत। वे दोनो आखिर गायें मागने आयेंगे तो वेदाती पण्डित को कह देना कि कौन-सी गाय ? जब सब ब्रह्मरूप है तो लेना देना क्या ? और बौद्ध पण्डित को कह देना कि तुमने जो गाय चराने के लिए दी थी, वह अब कहाँ है, वह तो चली गयी। ये तो नयी है, कोई और है। ग्वाले के मस्तिष्क मे बात जच गयी। उसे अच्छा समाधान मिला। उसने वैसा ही किया, जैसा उसे निर्देशन मिला। आखिर दोनो पडितो ने पैसा देकर अपनी गायें प्राप्त की।

महावीर का सिद्धान्त अचूक था और व्यवहारोचित भी। उनका मानना है कि प्रत्येक पदार्थ सत्ता के रूप मे ध्रुव है और पर्याय की दृष्टि से हमेशा परिवर्तनशील है।

महावीर ने एक और जिस समस्या का समाधान किया, वह है रूढिवादिता से मुक्ति। उस समय रूढिवादिता बडे चरम उत्कर्ष पर थी। महावीर स्वामी ने थोथी रूढिवादिता से मुक्त होने का निर्देश दिया। इसीलिए महावीर का धर्म और महावीर के सारे उपदेश ही रूढिवाद के विरोधक थे। महावीर अन्धानुकरण और अन्ध विश्वास पर श्रद्धा नही रखते थे। वे कहते हैं कि अन्धविश्वास और अन्धानुकरण नही, आत्मानुकरण होना चाहिए, सम्यक् विश्वास होना चाहिये। सत्य का अनुसरण करना चाहिए किन्तु सत्य का सन्धान करके।

जिधर भीड दिखती है, उधर मत दौडो। भीड अन्धी है। आखें व्यक्ति की होती है, भीड के नहीं। भीड भेडो का टोला है। वह अनुकरण-प्रेमी है, फिर चाहे कूए मे भी कूदना पडे। यदि मनुष्य केवल भेड चाल की तरह रूढिवाद पर चलता रहेगा, वह कभी भी सत्य को उपलब्ध नही हो सकेगा।

मैंने सुन रखा है कि एक साधक साधना कर रहा था। उसके एक पालतू बिल्ली थी। जब भी साधक साधना करने बैठता तो बिल्ली उसकी गोद मे उछल-कूद करने लग जाती। साधक ने सोचा कि इसका क्या उपाय किया जाय ? उसने बिल्ली

को एक खूटे मे बाध दिया। अब साधक को कोई परेशानी नही हुई। एक दिन साधना करते-करते ही वह साधक मर गया। साधक का शिष्य उसकी गद्दी पर आसीन हुआ जब वह ध्यान करने बैठता तो उसे अपने गुरु की बात याद आ जाती कि मेरे गुरु जब भी ध्यान करने बैठते थे तो सबसे पहले उस बिल्ली को खूँटे मे बांध देते थे। बिल्ली चाहे इधर हो चाहे उधर, लेकिन उसे खोज करके भी वे खूँटे से बाँध देते थे। लगता है कि उन्होने जो साधना की और साधना मे जो सिद्धि प्राप्त की, उसमे बिल्ली को खूँटे से बांधना जरूरी होगा। अत उसने भी बिल्ली को खूँटे से बाध दी, लेकिन बिल्ली एक दिन मर गयी तो चेले ने दूसरी बिल्ली मगाई और उसे खूँटे से बाध दिया। लोग उनसे आकर पूछते कि आप ध्यान करने बैठते हैं तो बिल्ली को क्यो बाँध देते हैं ? तो वह कहता है कि तुम नही समझते यह हमारी साधना की अपनी प्रक्रिया है। तुम जानकर क्या करोगे ? लोग सोचते कि अपने बाप का क्या जाता है, वह जाने, उसका काम। चिकने घडे पर पानी टिके जो ? दस साल बाद वह भी बिल्ली मर गयी। दूसरी बिल्ली आ गयी। कालान्तर मे वह चेला भी मर गया। तीसरा चेला आया गद्दी पर, गद्दीधर। उसने फिर बिल्ली मगाई। इस भाति यह एक नयी रीति, एक नई परम्परा चल पडी। उसके जो दादागुरु—प्रगुरु थे वे बिल्ली को किस उद्देश्य से बाधते थे, इसकी ओर किसी ने भी ध्यान नही दिया। बस, एक परम्परा चल पडी, वह सदियो-सदियो तक चलती ही रहती है। मूल मे क्या है, लोग इसे नही खोजते। महावीर स्वामी कहते हैं कि केवल रूढिवादिता पर ही थोडी चलना है। मूल तक पहुँचो कि बिल्ली आखिर क्यो बाधी गयी ? क्या अब भी जरूरत है उस बिल्ली को बाधने की ? मूल मे रही भूल भयकर शूल है।

महावीर ने मनुष्य को रूढिवादिता से मुक्त किया। उन्होने ब्राह्मणवाद और यज्ञ-कर्म के प्रति विरोध किया। लेकिन उनका विरोध बडा अहिंसक था, हिंसापूर्ण नही था। उसकी क्रान्ति शान्ति-भावना से भरी थी। उन्होने केवल ब्राह्मणवाद और यज्ञ-कर्म का विरोध ही नही किया, अपितु सच्चा ब्राह्मण और सच्चा यज्ञ क्या है, इसकी भी अपनी परिभाषाएँ दी। परिभाषाएँ मूल्यवान और नैतिक थी। फलत. उसका प्रभाव अन्य दार्शनिक मनीषियो पर भी पडा। जैनो के उत्तराध्ययन सूत्र के सत्ताइसवें अध्याय मे, और बौद्धो के धम्मपद के ब्राह्मण-वर्ग मे और हिन्दुओ के महाभारत के शान्ति पर्व मे सच्चा ब्राह्मण कौन होता है, इसकी बहुत विस्तार से चर्चा की गयी है। यज्ञ का भी महावीर भगवान् ने अपने-अपने ढग से नया अर्थ प्रस्तुत किया। जो यज्ञ केवल बाह्य-पक्ष से जुडा था, महावीर ने उसे अध्यात्म से जोडा। महावीर स्वामी की मान्यता थी कि जो लोग निरीह मूक पशुओ की बलि देते हैं, वह वास्तव मे यज्ञ नही, बल्कि हिंसा रूपी दानवी का नृत्य है। पुण्यकृत्य महापापकृत्य बन जाता है। सच्चा यज्ञ तो है अपने भीतर के पशुत्व को ज्ञानाग्नि और ध्यानाग्नि मे

आहूत करना। उन्होंने तप को अग्नि कहा। जीवात्मा को अग्नि-कुण्ड कहा। मन-वचन काया की प्रवृत्ति को कडछी कहा और कर्म के काष्ठ को आहूत करने का निर्देश दिया। उन्होने अपने ढग से यज्ञ की परिभाषा और प्रक्रिया बतायी और वह यज्ञ कर्म उनका सयम से युक्त था। महावीर की भाषा है—

तवो जोई जीवो जोईठाण,
जोगा सुया सरीरं कारिसंग।
कम्म एहा संजम जोग सन्ति,
होमं हुणामी इसिणं पसत्थ ॥

ऐसा यज्ञ ही शान्तिदायक और ईश्वरत्व की उपलब्धि कराने मे सहायक हो सकता है। महावीर की इस वात का गीता और अगुत्तरनिकाय आदि मे भी समर्थक सूत्र हैं।

सामाजिक सन्दर्भ मे भी महावीर ने समाधान दिये और वे काफी कीमती सिद्ध हुए। उन्होंने आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए परिग्रह को सीमित करने की प्रेरणा दी, अपरिग्रह के सिद्धान्त को खोजा, जिसके परिणामस्वरूप आगे जाकर साम्यवाद पैदा हुआ। सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए उन्होने अहिंसा जैसे सिद्धान्तो को लागू किया। जिसका परिणाम मनुष्य को शान्ति और निर्भयता प्रदान करना है। मनुष्य को युद्ध से, जीवन-सघर्ष से मुक्ति दिलाने मे महावीर स्वामी की वहुत वडी देन है, अनुपमेय। वैचारिक विषमता को दूर करने के लिए महावीर ने अनाग्रह और अनेकान्त जैसे सिद्धान्तो की खोज की, ताकि मनुष्य वैचारिक समन्वय स्थापित कर सके, हर सत्य को अपने दृष्टिकोण से देख सके। कारण, मनुष्य की वैचारिक आँखो पर जव तक एकपक्षीयता और आग्रहशीलता की पट्टी वन्धी रहेगी, तव तक उसे किसी भी वस्तुस्वरूप का अच्छी तरह से दर्शन नही हो सकता। सभी धर्मो के समन्वय के लिए, वैचारिक समन्वय की स्थापना के लिए उनका अनाग्रह और अनेकान्त वहुत वडी देन है। मानसिक विषमता को दूर करने के लिए उन्होने अनाशक्ति जैसे सिद्धान्तो की पुष्टि की, जिसका पालन कर मनुष्य आनन्द और वीतरागता को उपलब्ध कर सकता है।

इस तरह महावीर ने उस युग की एक-एक समस्या को समाधान दिया और जहाँ तक सम्भव हो सका, उन्होने सभी धर्मो मे समन्वय की स्थापना की। इसीलिए महावीर दुनिया के सवसे वडे सर्वधर्मसमन्वयाचार्य हुए। उन्होंने जो समस्याओ का समाधान खोजा, वह न केवल उनके समय मे सार्थक था, अपितु आज भी उसी रूप मे सार्थक हो सकता है। युग मे कोई वहुत वडा अन्तर नही आया है। उनके समाधान मे कोई अन्तर नही आया। उन्होने जो समाधान खोजे, वे समय के वुदवुदो के साथ क्षणभगुर होने वाले नही, अपितु शाश्वत हैं। हर स्थान और हर समय मे वे उपयोगी हैं। यही समाधानों का नैतिक मूल्य है। ●

चमत्कार : एक भ्रमजाल

प्रवचन-स्थल :
जैन भवन, कलकत्ता

प्रवचन-समय :
५ जुलाई १९८५

प्रश्न है : आपने कहा कि भगवान महावीर चमत्कार को नही मानते थे जबकि उनके जीवन मे ऐसे अनेक प्रसग हैं, जिनसे यह लगता है कि वे चमत्कारो मे विश्वास रखते थे।

चमत्कार कभी नही हो सकता। जहाँ-जहाँ पर चमत्कार की बात है, वहाँ-वहा आत्म प्रवञ्चना है। निश्चित रूप से भगवान महावीर चमत्कार में विश्वास नही रखते थे। यदि महावीर चमत्कार मे विश्वास रखते हैं, तो उनका जैनधर्म ही गलत साबित हो जायेगा। इसीलिये न केवल भगवान् महावीर ही, अपितु उनके परवर्ती काल मे हुए किसी भी जैनाचार्य ने चमत्कार नही दिखाया। चमत्कार के आते ही जैनधर्म, हिन्दू धर्म मे बदल जायेगा।

जैनधर्म और हिन्दू धर्म मे यही सबसे बडा अन्तर है। चमत्कार का मायाजाल हट जाये तो जैनदार्शनिको को सारा हिन्दू दर्शन स्वीकार हो जायेगा। हिन्दूधर्म अधिकतर चलता है ईश्वरवादिता पर। कर्ता, धर्ता, हर्ता यानी सर्वेसर्वा ईश्वर है। वह जिसका चाहे, उद्धार कर सकता है और जिसका चाहे उसे उठाकर पतन के गड्ढे मे गिरा सकता है। ईश्वर के लिये ससार शतरज का खेल है। जबकि जैनदर्शन चलता है कर्मसिद्धात पर। ईश्वर को यह मात्र नैतिक साध्य के रूप मे स्वीकार करता है। जैन दर्शन के अनुसार तो कोई किसी का न तो उद्धार कर सकता है और न ही पतन। जैसा करेगा, वैसा भरेगा।

कोई स्त्री अपने शरीर पर किरासन तेल डालकर और दियासलाई की आग लगाने का कर्म करती है तो वह जलेगी ही। जलना उस कर्म का फल है। यदि नही जलती है तो किरासन तेल सही नही था, पानी रहा होगा, तेल की जगह। एक ओर तो हो किरासन तेल और साथ मे हो दियासलाई की आग तो वहाँ आग लगेगी ही लगेगी, वहाँ वर्फ नही जम सकती। ऐसा चमत्कार नही हो सकता। जो लोग ऐसा दिखाते हैं, वह एक तरह का मायाजाल है। यह ठीक वैसे ही है जैसे यह ससार है। यहाँ ईश्वर का पक्ष नही होता। स्तरीय दार्शनिक श्रीमद्राजचन्द्र ने कहा है .

झेर सुधा समजे नहीं,
जीव खाय फल थाय।
एम शुभाशुभ कर्मनो,
भोक्तापणुं जणाय ॥

मतलब यह है कि जिस प्रकार जहर खाने वाला उसके प्रभाव से नही बच सकता, उसी प्रकार कर्मो का कर्ता भी उनके प्रभाव से नही बच सकता। यह बात जितनी तार्किक है, उतनी ही अनुभवसिद्ध। इसमे भ्रम का स्थान नही है।

मैंने पढा है एडरशन को। प्रख्यात पाश्चात्य दार्शनिक है वह जिसने चमत्कार को भ्रमजाल कहा है। उसने लगभग कोई बाईस चीजें लिखी हैं, जिन्हे लोग चमत्कार मानते हैं। यदि उन बाईस चीजो मे से कोई एक चीज भी आँखो के सामने सम्यक्तया करके दिखा दे। उसे वह एक एक लाख डालर देने को तैयार है और अपनी सारी दार्शनिक मान्यताओ तथा अपने दार्शनिक ग्रन्थो को वह असत्य मजूर कर लेगा। शायद अभी तक उसे कोई परास्त नही कर पाया।

महावीर ठहरे परम वैज्ञानिक। एडरशन महावीर के वक्तव्यो से प्रभावित हुआ होगा। महावीर सुनी सुनायी बातो पर विश्वास नही करते। वेद इसीलिये तो महावीर स्वामी के मस्तिष्क मे स्थान प्राप्त नही कर पाये। वेद श्रुति है। श्रुति याने श्रवणित—सुना हुआ। सुनते तो बहुत हैं। लोगो को भी सुनने-सुनाने मे बडा मजा आता है। किन्तु देखना दुर्लभ है। श्रोता और वक्ता दोनो नदी के मध्य है और द्रष्टा किनारे पर। सुनना उतना जरूरी नहीं है जितना देखना। कानो सुनी सो कच्ची, आँखो देखी सो सच्ची। इसीलिए महावीर ने श्रुति के स्थान पर दृष्टि पर ज्यादा जोर दिया था। आँखो से देखो यथार्थता को। सुनी-सुनायी बातें उतनी विश्वसनीय नहीं होती, जितनी आँखो देखी होती है। सुनी-सुनायी बातो मे चमत्कार की बातें भी आ सकती हैं, किन्तु आँखो देखी चीजो मे चमत्कार की सभावना भी नही होती।

अहले दानिश आम हैं
अहले-नजर कमयाब हैं

द्रष्टा का ज्ञान सम्यक् होता है। शास्त्रो के ज्ञाता बहुत हैं। पण्डित भरे हैं दुनिया में, मगर वे विद्वान तथाकथित हैं। किन्तु शुद्ध आँख वाले, सम्यक् द्रष्टा विरले ही हैं। महावीर उन विरले लोगो मे पहले हैं। तू कहता कागद की लिखी, मैं कहता आँखन की देखी—कबीर का यह वक्तव्य बहुत सही है। परम द्रष्टा ही ऐसी बात कह सकते हैं।

इसीलिए महावीर ने राम तथा कृष्ण की बातो को नही कहा। बुद्ध ने महावीर की बातो का कथन नही किया। ईशा ने बुद्ध के वक्तव्यों को प्रगट नही किया। कारण हर व्यक्ति के अपने अपने अनुभव होते हैं। अनुभवो की अभिव्यक्ति मे सब स्वतन्त्र हैं। राम की अपनी अनुभूति थी, महावीर को अपनी, बुद्ध की अपनी, शकर और तिलक की अपनी। अनुभव मे डूबा व्यक्ति कभी दूसरे के अनुभवो को नही कहेगा। हर द्रष्टा के अपने दृष्टिकोण होते हैं। उसके लिए दूसरो की बातें सुनी सुनायी बातें हैं। स्वानुभूत बातें नही हैं। महावीर को जो जचा, वह उन्होने कहा। महावीर विज्ञान के प्रणेता हैं। वे आँखो देखी पर विश्वास करते हैं और वही कहते हैं। इसीलिए महावीर की बातो को विज्ञान इनकार नही करता। विज्ञान चमत्कार

को स्वीकार नही करता और महावीर भी। विज्ञान और महावीर एक ही तराजू के दो पलडे हैं।

महावीर ने अपने युग मे जो क्रान्ति मचाई, वह यह थी कि उन्होंने चमत्कारों का विरोध किया। महावीर ने जितनी भी क्रांति मचाई, वह सब चमत्कार को लेकर ही। उनकी अभिलाषा थी कि लोगो की अन्धनिष्ठा दूर हो और वे सत्य के आलोक मे प्रामाणिक जीवन बीता सके। उस समय चमत्कार के वशीभूत होकर ही यज्ञ होते थे, बलि दी जाती थी, क्रियाकाण्ड होते थे, अकर्मण्यता पनपी, पुरुषार्थ का पतन हुआ—सबके सब चमत्कार के वशीभूत होकर ही। महावीर स्वामी की दृष्टि मे चमत्कार कोई चीज नही है। उन्होने चमत्कार को बिल्कुल इन्कार कर दिया। दुनिया मे जितने भी महापुरुष हुए कोई भी महापुरुष चमत्कार नही दिखा पाये। किसी ने भी कभी चमत्कार नही दिखाया आज तक, चाहे हम महावीर को लें चाहे बुद्ध को लें, चाहे ईसा को लें, सुकरात को लें, पायथागोरस को लें। किसी ने चमत्कार नही दिखाया। रामकृष्णपरमहस, विवेकानन्द, महर्षि आनन्द योगी, रजनीश जैसे भी चमत्कार न दिखा पाये।

सुकरात को जहर का प्याला पिलाया गया, लेकिन वे उसे अमृत मे न बदल पाये। ईसा को जिन्दा शूली पर चढा दिया गया। ईसा जैसे महापुरुष को शूली पर चढा दिया जाय, उससे बडा चमत्कार और क्या हो सकता है? महावीर के कानो मे कीले ठोकी गयी। कितना अत्याचार किया था लोगो ने महावीर पर। मारा, पीटा, घसीटा, गालियाँ दी उन्हें। स्वामी रामकृष्ण परमहस मरते दम तक पीडित रहे। कैन्सर हो गया, लेकिन वे भी चमत्कार न दिखा पाये। साध्वी विचक्षणश्री को भी वर्षो कैन्सर रहा बडी महत्त्वपूर्ण और समाधिस्थ स्त्री थी वह. राबिया बसी जैसी ही थी मगर भोगना पडा।

पुराना युग तो चमत्कारो का ही युग था। इसलिये जहाँ भी गुजाइश लगती, लोग चमत्कार को जोड देते, और फिर बातो का बतगड—तिल का ताड बना डालते। यदि चमत्कार पहले होते तो आज भी होने चाहिए। और, बडे खुलेआम-सार्वजनिक तथा सार्वभौम होने चाहिये। ताकि एडरशन जैसे बौद्धिकवादी लोगो को स्पष्टता मिल जाये।

चमत्कार का मतलब है जो असम्भव है, उसे सम्भव करना। असम्भव को सम्भव करना ही चमत्कार है। प्रगतिशील दुनिया मे ऐसी कोई भी चीज नहीं है, तथ्य नहीं है, जो असम्भव हो। मैक्समूलर बडा गजब का व्यक्ति था। सैकडो महान् ग्रन्थ उसने अकेले रचे। उसने कहा कि हमें शब्दकोश से 'इम्पोसिबल' शब्द को हटा देना चाहिये। क्योकि कोई भी ऐसी वस्तु नही है जो 'इम्पोसिबल' हो। 'एव्रीथिंग इज पोसिबल'—सब सम्भव है, असम्भव कुछ भी नहीं है। असम्भव शब्द को रखना

मनुष्य की कायरता और कमजोरी को प्रगट करना है। समय आने पर सब कुछ सम्भव है और जहाँ सब कुछ सम्भव है, वहाँ चमत्कार नही है।

आज विज्ञान का युग है। यहाँ अब बहरे भी सुनने लगते हैं, गूगा भी बोलने लगता है और पंगु चलने लगता है। विज्ञान का प्रत्येक आविष्कार नया आश्चर्य है। आप लोग तो उसे भी नया चमत्कार मानेंगे। ये वायुयान, बिजली वायरलेस, टेलीविजन, टेलीस्कोप, मशीन्स, हाइड्रोजन बम, टैंक टारपीडो—इनकी तो शायद हमारे पूर्वजो को कल्पना भी नही होगी। उनके लिए तो ये सब महाअसम्भव थी। मगर आज कोई कह सकता है कि ये सब सम्भव नही है? आँखो से देखे हुए को भला कौन अस्वीकार कर सकता है? उचित समय और उचित श्रम ही नया आविष्कार करता है। इस विज्ञान के सामने चमत्कार की बातें अमान्य हैं।

महाभारत मे महायुद्ध हुआ। कृष्ण को भगवान् का अवतार माना जाता है। कृष्ण जब ईश्वर के अवतार थे, वे चाहते तो अकेले ही सारे कौरवो को नष्ट कर सकते थे। उनके पास सघन शक्ति और ताकत थी, लेकिन उन्होने यह चमत्कार नही किया। यदि वे ऐसा कर देते तो धर्मनीति और धर्मयुद्ध कोडी की कीमत के भी नही रहते। अर्जुन युद्ध के मैदान से खिसकने लग गया, किन्तु चमत्कार न दिखा सके कृष्ण। यदि कृष्ण चमत्कार दिखा देते तो गीता का एक श्लोक भी नही रच पाता। गीता जैसे अमूल्य ग्रन्थ के जन्म के लिए यह जरूरी था कि कृष्ण कोई चमत्कार न दिखाये। कृष्ण ने यह कार्य महत्त्वपूर्ण किया कि युद्धक्षेत्र से पीठ फेरते अर्जुन को पीठ न फेरने दी और इस तरह क्षत्रिय धर्म और वीरत्वधर्म को कलकित होने से बचा दिया।

यदि कोई व्यक्ति चमत्कार दिखाता है तो इससे सदाचार-सद्विचार को बहुत बड़ा धक्का लगेगा। आचार-विचार को इतना धक्का लगेगा कि साधना-दर्शन समाप्त हो जाएगा। भाग्य और पुरुषार्थ ये दोनो ही नही बचेंगे, यदि चमत्कार हो जाये। चमत्कार-शास्त्र कर्मशास्त्र के अस्तित्व को क्षति पहुँचायेगा, जबकि कर्मशास्त्र सबको मान्य है। हर घट-घट मे पल-पल मे कर्म की गति का दर्शन होता है। जो नियत है, उसे भूत, वर्तमान या भविष्य में अनियत नहीं किया जा सकता—ण एव भूअ वा, भव्व वा, भविस्सति वा। इसलिए चमत्कार कभी नही होता। भगवान् महावीर चमत्कार को कभी स्वीकार नही करेंगे।

कोई भी व्यक्ति ऐसा नही है जो कि दिखा दे कि चमत्कार है। जहाँ-जहाँ चमत्कार है, वहाँ-वहाँ पक्षपात है। नियमो और सिद्धान्तो मे भी जब पक्षपात होता है, तो वे नियम और सिद्धान्त किसी एक पक्ष से ही सम्बन्धित होते हैं, सार्वभौम नही हैं वे। सिद्धान्त शाश्वत होते हैं, चमत्कार शाश्वतता को क्षणभगुर करने वाला है। शास्त्र कालप्रभाव से तिरोहित हो सकते हैं, किन्तु सिद्धान्त अमिट और अनन्त हुआ करते हैं। इसलिए चमत्कारो का अपवाद सिद्धान्त-विरुद्ध है।

जो भी नियम बनते हैं वे निर्वैयक्तिक और सार्वभौम होते हैं। ऐसा नही हो सकता कि जहर को पीनेवाला व्यक्ति न मरे या उससे प्रभावित न हो। ऐसा नही हो सकता कि बबूल का बीज बोनेवाला आम खा सके। जो सिद्धान्त है वे सब के लिए एक बराबर हैं। सिद्धान्त यानी सिद्धि का फार्मूला। सिद्धान्त मे नगद चाहिये, उधार नही। सिद्धान्तो के सामने चमत्कार का अपवाद नहीं हो सकता।

मैंने जिन्दगी भर पाप किये हैं और अन्त मे जाकर परमात्मा की शरण ले ली और कह दिया कि परमात्मा मुझे उबार दे। लेकिन परमात्मा उबार नही सकता। यह चमत्कार कदापि नही हो सकता कि परमात्मा शरणभूत पापी को उबार दे। यदि परमात्मा शरणभूत को उबारने का चमत्कार दिखा देंगे, तो किये हुए पाप को कौन भोगेगा ? परमात्मा की शरण लेना यह हमारी सद्‌भावना है मगर अपनी नौका को हमे स्वय ही खेना पडेगा, तभी परमात्म-तट प्राप्त हो पायेगा। अगर आदमी स्वय पापो से छुटकारा पाने का प्रयास न करके मात्र परमात्मा भगवान् से मुक्ति की प्रार्थना करना स्वय को हीन, दीन और परापेक्षी बनाना है। बाइबिल मे बताया है कि वह व्यक्ति स्वर्ग के राज्य मे प्रवेश नही कर पायेगा, जो ईसा-ईसा पुकारता है बल्कि वह आदमी स्वर्ग के राज्य मे प्रविष्ट हो पायेगा, जो परमपिता की इच्छा के अनुसार कार्य करता है। वस्तुतः सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दृष्टि और सम्यक् आचार ही परमात्मा तक पहुचने का तरीका है, ऐसा कुन्दकुन्द ने नियमसार मे लिखा है। परमात्मा न तो किसी को ससार से पार कर सकते हैं और न किसी प्रकार की उपलब्धि मे सहयोगी है। यदि हमलोग ऐसे उद्धारक मे निष्ठा करेंगे जो हमारी प्रार्थना से हमे पाप से उबार ले तो इससे सदाचार की महिमा को बडा भारी धक्का लगेगा। सब लोग पाप ही पाप करेंगे। पुण्य कोई नही करेगा। जब इच्छा हो चले जाओ परमात्मा के पास, परमात्मा पार लगा देगा। फिर क्यो न पाप करें ? फिर तो चार्वाकियो की बात आ जायेगी कि क्या है पाप और पुण्य ? खाओ, पीओ, मौज उडाओ—ऋण कृत्वा घृत पिबेत। इस तरह तो नास्तिकता चरम सीमा तक पहुंच जाएगी। कुछ भी नही बचेगा इस चमत्कार के साथ। चमत्कारो का बवण्डर सब धूलिधूसरित कर देगा। इसलिए चमत्कार से हमको दूर होना है। इसीलिए भगवान् महावीर चमत्कार को नही मानते थे। और, उनके जीवन मे एक भी ऐसा प्रसग नही है, जिससे यह साबित हो सके कि महावीर चमत्कार मे विश्वास रखते थे।

चमत्कार को वणिक लोग मान सकते हैं, क्षत्रिय लोग नही। वणिक तो हर सौदा ही ऐसा करता है, जो असम्भव हो। जिसमे लागत कम, उपलब्धि अधिक हो। खरीद तो उधार और विक्रय नगद। वह अपने जीवन मे यही चमत्कार मानता है। इसमे उसका बनियापन है, लेकिन महावीर क्षत्रिय थे—महावीर से पहले हुए तेवीस तीर्थंकर—ऋषभ से पार्श्व तक—वे भी क्षत्रिय थे। यही तो खास बात है। जैनियो

के सारे तीर्थंकर, धर्म-प्रवर्तक क्षत्रिय और आज के सारे जैनी वणिक। तीर्थकर चमत्कार के विरुद्ध आन्दोलन करता है और वणिक चमत्कारो मे विश्वास। आज का जैनी चमत्कारो का अनुगमन मात्र है। जैनो मे स्थानकवासी और तेरहपन्थी—ये लोग तो चमत्कार के फन्दे मे सबसे ज्यादा जकडे हैं। ये महावीर की मूर्ति को नही पूजेगे, कहेगे यह पत्थर है—घर सजाने का खिलौना। किन्तु यह कितने मजे की बात है कि ये लोग उन देवी-देवताओ के मन्दिर मे दिन मे अनेक बार जाकर नाक रगडेंगे, जो काफी चमत्कारिक माने जाते हैं। वे देवी-देवता फिर चाहे सम्यक्त्वधारी हो चाहे मिथ्यात्वी—इससे उनको कोई प्रयोजन नही है। फल यह हुआ कि वे न तो पूरे मूर्तिपूजक जैन हुए और न अमूर्तिपूजक। बिचारे धोबी के गधे की हालत हो गई। धोबी का गधा न घर का न घाट का।

ये लोग उसी धर्म को, उसी सन्त को, उसी भगवान को आदर देना चाहते हैं जो चमत्कारो से भरा है। मगर जिन व्यक्तियो के पास पराक्रम है, पुरुषार्थ है वे व्यक्ति चमत्कार को कभी नही मानेंगे। जैनो के तीर्थ कर पुरुषार्थ भावना से ओतप्रोत होते हैं। हर असम्भव को सम्भव करने वाला ही सत्यत तीर्थकर है। इसीलिए वे सबसे पहले इन्सान के रूप मे ईश्वर बनते हैं, कैवल्य और सर्वज्ञता हासिल करते हैं ताकि संसार का प्रथम असम्भव कार्य सम्भव बन जाये और लोगो का इस बात से विश्वास हट जाये कि दुनिया में कोई चीज असम्भव भी है।

जिन्हे हम तीर्थ कर-अतिशय कहते हैं, वे अतिशय कोई चमत्कारिक आश्चर्य नही है। अनेक आधुनिक विद्वान उन्हे नही मानते। कहते हैं कि ये सब ढकोशला है परन्तु मैं इन्हे मानता हू। जैसे तीर्थंकर मनुष्य होते हैं और उनके साथ जो अतिशय जोडते हैं, वे मानवमात्र में देखे जा सकते हैं। उदाहरणत मैं आभामण्डल—प्रभामण्डल को लेता हू। हम देखते हैं चित्रो मे कि राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, शकराचार्य या अन्य किसी महापुरुषो के आस-पास आभामण्डल चित्रित है। बहुत से सन्तो के चित्रो मे भी प्रभामण्डल की रेखाएं दिखाई जाती हैं। सन्त हरिकेशबल चण्डाल थे, सन्त कबीर जुलाहा थे, सन्त गोरा कुम्हकार थे, रैदास जूता-चप्पल बनाते थे, फिर भी प्रभामण्डल दिखाते हैं हम उनके आस-पास। अनेक लोग या तो इसे कल्पना मानते हैं, या फिर कोई महान् चमत्कार। किन्तु मैं इसे न तो कल्पना की हवाई उडान समझता हूँ और न कोई चमत्कार। आप लोग जब सोकर उठें प्रात.काल तब आँख खोलते ही इस प्रभामडल की झलक देख सकते हैं। यदि उसका दर्शन करने का लक्ष्य है तो दर्शन हो सकता है। सूर्य की चकाचौंध मे वह प्रभामण्डल दिख नही पाता। आज के विज्ञान के अनुसार यह प्रभामण्डल प्रत्येक व्यक्ति के आसपास रहता है। वैज्ञानिक तो कहते हैं कि यह प्रभामण्डल पशुओ और पेडपौधे के पास भी होता है। वैज्ञानिक बताते हैं कि जीव तथा अजीव, चेतन तथा अचेतन को सिद्ध करनेवाला यह प्रभा या

आभामण्डल ही है। जिसके आस-पास प्रभामण्डल नही है, वह शव है, मृतक है। हाँ! यह सम्भव है कि किसी व्यक्ति का प्रभामण्डल विस्तृत हो और किसी का सकुचित, किसी का दृश्य और किसी का अदृश्य। वस्तुत व्यक्ति जितना अधिक जीवन्त होता है, उसका प्रभामण्डल उतना ही अधिक विस्तृत और स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अब तो खैर इस प्रभामण्डल को हर आदमी देख सकता है। सन् १९३० मे ऐसा रासायनिक प्रक्रियामूलक यन्त्र तैयार किया गया था, जिसके द्वारा हर किसीके प्रभामण्डल का—आभामण्डल का दर्शन किया जा सकता है। हम जो अब विज्ञान केवलज्ञान आदि की चर्चा करते हैं, वह वास्तव मे इसी प्रभामण्डल की विस्तृतता है। जब किसी जीवन्त साधक को सुदूर की वस्तु को देखना या जानना होता है तो वह अपने इसी प्रभामण्डल को साधन बनाता है। वह अपने प्रभामण्डल की किरणो को एकत्र कर केन्द्रीभूत करता है। और, वे दूरगामी किरणें उसे मनोवाछित तत्त्व का स्पष्ट अवलोकन करा देती है।

हम दादा गुरुदेव को चमत्कारिक पुरुष कहते हैं, लेकिन दादा गुरुदेव ने कभी चमत्कार नही दिखाया। यदि दादा गुरुदेव को हम चमत्कारिक मानें तो उनका साधुत्व खत्म हो जायेगा। उनका आचार्यत्व समाप्त हो जायेगा। वे साधु नही, आचार्य नही, एक मदारी हो जाएँगे। ऐसे सन्त व्यक्ति को जैनागमो मे परदर्शनी कहा है, वह जिनदर्शनी नही है। वह जैनत्व और साधुत्व—दोनो से च्युत है।

इसलिए चमत्कार न तो स्वस्थ साधना है, न कोई शुद्ध आदर्श है। यह वैज्ञानिक भूमिका की बातें नही है। आज के वैज्ञानिक और प्रगतिशील युग मे यह अन्धविश्वास मात्र है। इसमे आत्म-विश्वास का नामोनिशान नही है। आज भी लोग टोना-टोटका, जन्तर-मन्तर के फेर मे पडे रहते हैं। और, जो इनके जाल मे एक बार फस गया, तो वह मुक्त होने वाला नही। शायद हो जाये'—इसी आशका और सभावना के भवर मे वह डूबता रहता है। वह चमत्कारो की माया मे दिग्भ्रमित हो जाता है। पतजलि की भाषा मे वह व्यक्ति न सुषुप्त है, न जागृत—अपितु स्वप्नलोक की यात्रा पर है। सावचेत वह तब होता है जब उसे भयानक हानि होती है या निरर्थकता का बोध होता है।

टोने-टोटके और जन्तर-मन्तर की बातें मैं बहुत बार सुनता-पढता रहता हू। जहाँ ससार आज कहाँ का कहाँ पहुँच रहा है, वहाँ कुछ लोग टोने-टोटको के चमत्कार पाश मे जकडे वही के वही है जहाँ वे सैकडो वर्ष पहले थे। लोगो द्वारा इन टोने-टोटको मे फँसकर अपनी तबीयत ठीक करने के लिए पशुओ की बलि देना, अधिक रुपया पाने की लालसा से घर का रुपया खो बैठना, माँ बनने के लिए बाझ द्वारा दूसरे के बच्चे की हत्या कर देना, अपने पति को वश मे करने के लिए जन्तर-मन्तर करना-ये सब कोरी अन्धनिष्ठा की बातें हैं। इनमे कोई सार नही है। गहराई से देखें तो

असारता ही नजर आएगी। ठीक वैसे ही, जैसे प्याज के छिलके उतारते जाओ, उतारते जाओ अन्त मे सार कुछ भी हाथ नही लगता। रोगनिवारण के लिए डाक्टर से चिकित्सा कराओ, दवाई लो। ज्यादा रुपया कमाने के लिए ज्यादा श्रम करो। वाझ स्त्री को भला कभी वेटा होता है? पति को वश मे करना है तो अपने सद्व्यवहारो के द्वारा वश मे करो। टोने-टोटको से ये चमत्कार शक्य नही है।

आप रोजाना पढते होगे अखवारो मे तावीज और अगूठियो के वारे मे। बडे चक्कर मे फसाते हैं वे लोगो को। वे अखवारो मे छपाते हैं कि यह अगुठी सिद्धिदायनी है, इसे जो पहनेगा, उसे सात दिन के अन्दर नौकरी मिल जाएगी। इसका मूल्य मात्र पच्चीस रुपये हैं। लोग खरीद लेते हैं। सात दिन क्या, सात सप्ताह मे भी जव उसे नौकरी नही मिलती तो वह पछताता है कि पच्चीस रुपये भी वेकार गए। नौकरी मिलने के स्थान पर ओझा-पडित को उल्टे पच्चीस रुपये नौकरी के घर से देने पडे। यानी बाजार आलू खरीदने गये। आलू-वालू तो कुछ मिला नही पीछे भालू और लग गया। जान जोखिम मे, लेने के देने पड गये।

मैंने सुना है कि एक छात्र ने एक अगूठी खरीदी, जिसका नाम था महाफलदायिनी। विक्रेता पडित ने कहा कि इस अगूठी का यह चमत्कार है कि इसे जो भी पहनेगा, वह अपनी परीक्षा मे प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होगा। छात्र ने अगूठी खरीद ली और पाठ्यक्रम की पुस्तको को पढना वन्द कर दिया। क्योंकि उसे वताया गया था कि वह इस अगूठी के महाप्रभाव से प्रथम श्रेणी प्राप्त करेगा। घर वाले उससे पढने के लिए कहते तो वह कहता कि आप चिन्ता न करें। मैं प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होऊँगा। परीक्षाएँ हुई। परीक्षाफल घोषित हुआ। विना पढनेवाला क्या खाक पास होगा। वह प्रथमश्रेणी से उत्तीर्ण होने के वजाय प्रथमश्रेणी से अनुत्तीर्ण हुआ। अभिभावको ने उसे भारी उपालम्भ दिया। आखिर उसने महाफलदायिनी अगूठी वाली सारी वात वतायी और कहा कि अव भविष्य मे मैं इन सव पर कभी विश्वास न करुगा। यह महाफलदायिनी अगूठी का ही महाफल है कि मैं अनुत्तीर्ण हुआ, फेल हुआ और मेरा एक वर्ष व्यर्थ ही चला गया। उत्तीर्ण तो पढने लिखने से होता है न कि इन टोने-टोटको—जन्तर-मन्तर से।

यह विद्या वास्तव मे ठगविद्या है। दूसरो को मूर्ख भी वना दें और अपना काम भी हो जाय—एक पथ दो काज होते हैं इस विद्या से। यह उनकी एक तरह की व्यावसायिक पद्धति है। देखते नही हैं आप! कुछेक लोग हवडा पुल या विक्टोरिया मे वैठ जाते हैं और भी वडे-वडे मार्गो पर वैठते हैं तोता या किसी पक्षी को एक पिजरे मे वन्द कर लेते हैं और मात्र अठन्नी मे आपके भविष्य को वताने का महान् चमत्कार दिखाते हैं। सर्वज्ञता और भविष्यवाणियाँ जव अठन्नी मे उपलब्ध हो जाये तो धर्म, कर्म, साधना—ये सव कोडी की कीमत के हो जाएँगे। विचारे जो ऐसा

कार्य करते हैं, भविष्यवाणियाँ करते हैं उन्हें स्वय का भविष्य भी पता नही है। सिद्धिदायिनी मनवाछितफलदायिनी, अमृतदायिनी अगूठियाँ सिद्ध करके वेचनेवाले खुद महागरीब हैं। वे अगुठियाँ उनकी अगुठियो को वेचने की इच्छा को पूरा नही कर पाती, इसीलिए तो ये लोग अखवारो मे, पत्रिकाओ मे विज्ञापन छपाते हैं। जो अगूठी स्वश्रेयस्कर सिद्ध नही हुई वह जनश्रेयस्कर कभी नही हो सकती।

टोना-टोटका—अन्तर-मन्तर—चमत्कार इन सव को वही व्यक्ति पसन्द करेगा, जो विना साधना के सिद्धि चाहता है, विना प्रयास के फल की कामना करता है, खाने का श्रम किये विना पेट भरना चाहता है। लोग फल को महत्ता देते है, कर्म की उपेक्षा कर देते हैं। गीता मे तो कर्मशीलता पर वहुत प्रकाश डाला गया है। गीता भवन है तो कर्मशीलता का उपदेश उस भवन की नीव है। निष्कर्मशीलता तो परित्याज्य है।

हम जव निरुपाय वैठे हैं,
कौन हरे पथ की वाधाएँ ?
भीतर से परतन्त्र हुए जव,
धूमिल हुई सकल आशाएँ।

हम जादू देखने के लिए जादूघर मे जाते है, वहुत वार जाते हैं। यही सुनते हैं कि वह जादू करेगा, एक आश्चर्य होगा, लेकिन जादूगर अपना जादू शुरु करने से पहले यह कह देता है कि यहाँ जादू नही, केवल हाथ की सफाई है। वह स्वय यह कहता है कि मैं सिर्फ हाथ की सफाई, हाथ की कला दिखाता हू। जादू कुछ भी नही है।

अहमदावाद मे मैं जादूगर के० लाल के यहाँ गया था, गोचरी के समय। दो भाई हैं वे। दोनो जाने-माने और प्रसिद्ध जादूगर हैं—अन्तर्राष्ट्रीय। हमसे वे अच्छा स्नेह रखते थे। मैंने एक दिन उन्हे कहा कि आजे तमे अमने पण कोईक जादू जोवावो, पण एक शर्त छे के आखो नी सामे अने नजीक थी। यानी आज आप हमे भी कोई जादू दिखायें, लेकिन एक शर्त साथ मे है कि आंखो के सामने और समीपता से दिखायें। उन्होने उस समय वात टाल दी। मैंने सोचा कि आज उनका मूड नही होगा। अगले सप्ताह मैंने फिर उनसे अपनी वात कही। उस दिन के० लाल भाई नही थे, विदेश गये हुए थे, जादू के करिश्मे दिखाने। उनके भाई थे। उन्होने मुझे कहा, 'हू तमारी सामे असत्य न वोलीश। खरेखर, जादू माँ कोई मन्त्र-शक्ति के आवी कोई वस्तु नथी। ए तो फक्त हाथ नी सफाई छे अने हाथ नी सफाई नजीक थी केम जोवाई सकाय। तो उनका कहना स्पष्ट था कि जादू मे कोई मन्त्र-शक्ति या ऐसी कोई वस्तु नही है। यह तो केवल हाथ की सफाई है, हाथ की करामात है और वह मत्त पर सम्भव हैं, निकटता से नही।

के० लाल को छोडें, सभी जादूगरो ने इस वात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि जादू एक सतत अभ्यास है। फुर्तीलापन, मस्तिष्क की प्रखरता और हाथ की सफाई—यही जादू के प्राण हैं। 'कादम्विनी' का नया 'जादू विशेषाक' तो आप लोगो ने पढा—देखा ही होगा। सभी महान जादूगरो के विषय मे उसमे सूचनाएँ दी गई हैं और उनके अनुभव उसमे सकलित हैं। डण्डे को फूल मे वदलना, हाथ से राख निकालना, टोपी मे से कवूत्तर उडाना, गला काटकर वापस जिन्दा कर देना पुरुष को स्त्री वना देना—इन सवको जादू या चमत्कार मानें ऐसी कोई चीज नही है। केवल हाथ की सफाई है भ्रमजाल की रचना है, जो जादू मैं दिखाता हू वह जादू तुम भी कर सकते हो। मात्र अभ्यास की जरूरत है जो जादू हर व्यक्ति कर सकता है वह चमत्कार नही है। असम्भव कार्य तो वहाँ है जिसे कोई अकेला कर सकता है, उसके अलावा और कोई नही कर सकता। तव तो कह सकते हैं कि चमत्कार है अन्यथा चमत्कार नही है।

चमत्कार तो वह हैं कि जहाँ पचास डिग्री पर पानी भाप वन जाये, चमत्कार तो वहाँ है जहाँ एक सौ पचास डिग्री पर पानी भाप न वने लेकिन महावीर स्वामी तो विलकुल अडिग हैं। वे कहते हैं कि पचास डिग्री पर पानी कभी भाप नही होगा, और एक सौ पचास डिग्री पर पानी वचेगा ही नही। सौ डिग्री पर पानी भाप वन जायेगा महावीर का तो फार्मूला यही है कि सौ डिग्री पर पानी भाप वनता है। वैज्ञानिक वुद्धि का व्यक्ति महावीर से विलकुल सहमत है। वह चमत्कार को कभी स्वीकार नही करेगा। महावीर स्वामी के जीवन मे एक भी ऐसा प्रसग नही है जिससे यह सावित हो सके कि भगवान महावीर चमत्कार मे विश्वास रखते हैं। उन्होंने कभी भी चमत्कार नही दिखाया। वे परम ज्ञान के धनी थे फिर भी कभी चमत्कार दिखाया हो ऐसा कही ज्ञात नही हुआ।

महावीर जन्म से पहले एक ब्राह्मणी की कुक्षी मे थे। महावीर तीर्थंकर हैं। तीर्थंकर कभी चमत्कार को स्वीकार नही करते। तो महावीर ब्राह्मणी के कुक्षी से महावीर का जन्म नही हो सकता उसके लिए क्षत्रिय का खून चाहिए। युद्ध के मैदान मे यदि कोई व्यक्ति चमत्कार दिखाता भी है तो क्षत्रिय चमत्कार को नहीं देखता, वह तो उसे भ्रमजाल समझता है और युद्ध करता ही चला जाता है। इस चमत्कार के विरोध के लिए ही दुनिया का पहला ऑपरेशन हुआ। महावीर के पच्चीस सौ वर्ष वाद जो गर्भ-परिवर्तन की वात प्रगट हुई, उसे महावीर के जीवन-यज्ञ में सहजत. देखी जा सकती है। गर्भ-परिवर्तन के विज्ञान का सूत्रपात महावीर से हुआ और ब्राह्मणी का गर्भ क्षत्रियाणी की कुक्षि मे आया वहुत से लोग महावीर स्वामी के गर्भ-स्थानान्तरण को चमत्कार मानते हैं। लेकिन यह चमत्कार नही है। आज तो हर डाक्टर यह चमत्कार दिखा सकता है। हर विशिष्ट चिकित्सक मे यह चमत्कार दिखाने की शक्ति है। तव हम कैसे मानें कि यह कोई वहुत वड़ा चमत्कार है।

जव महावीर सात-आठ वर्ष के हो गये, एक दिन खेल रहे थे उन्होंने एक सर्प को आते देखकर उसे पकड लिया और उछालकर दूर फेंक दिया। लोगो ने सोचा यह चमत्कार है। लेकिन यह चमत्कार नही, महावीर स्वामी की निडरता का प्रतीक है साधना के लिये महावीरत्व को पाने के लिये साहस की जरुरत है, निडरता की जरूरत है। इसे चमत्कार मानना भारी भूल है। साहसी निडर और महावीर व्यक्ति ही साधना कर सकते हैं—यह तो इस वात का परिचायक है।

इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारण कर महावीर स्वामी से पाठशाला मे कई प्रश्न पूछे। महावीर के गुरु स्वय आश्चर्यचकित हो रहे थे कि छोटा सा वच्चा कैसी-कैसी वातें वता रहा है, लेकिन इन्द्र को कोई आश्चर्य ही नही था। क्योकि वह तो महावीर की ज्ञान-शक्ति के वारे मे जानता था। इन्द्र ने तो सारी वात खुलासा कर दी। लोगो को यह चमत्कार लग रहा था तो इन्द्र ने वताया यह चमत्कार नही महावीर का निजी ज्ञान है। ये ज्ञान के घनी हैं।

महावीर तीस वर्ष की उम्र मे साधु वन गये थे। चलते हुए जव आगे वढे साधना करने के लिये तो एक ग्वाले ने उनके कानो मे कीलें ठोकी लेकिन महावीर कोई चमत्कार न दिखा सके। उनके पास वहुत ज्ञान था, वहुत शक्ति थी, तीर्थ कर की शक्ति थी किन्तु फिर भी वे चमत्कार न दिखा सके। यह घटना तो महावीर को अन्तर-ऊर्जा के विकसित करने मे सहायक वनी। सहनशीलता और सहिष्णुता का यह अद्वितीय प्रसग है, विश्व-दर्शन मे।

चण्डकौशिक वाली घटना मे कहते हैं हम कि यह वहुत वडा चमत्कार है, लेकिन मैं इसे चमत्कार नही मानता। चण्डकौशिक भगवान महावीर को एक वार दो वार, तीन वार डँसता है। चण्डकौशिक जिसकी फुफकार से सारा जगल नष्ट-भ्रष्ट हो जाता था, उसकी तीन-तीन फुफकारो से भी महावीर को कुछ भी नही हुआ उल्टे महावीर के अँगूठे से खून की जगह दूध वहा। आप इसे आश्चर्य मानेंगे, चमत्कार मानेंगे। लेकिन मैं इसे न तो आश्चर्य मानता हूं और न ही चमत्कार।

दिल्ली की वात है। एक वार एक डा० मेरे पास आये, डा० जैन ही थे। उन्होने मुझे कहा कि भगवान महावीर के जीवन मे चण्डकौशिक और दूध वहने की जो घटना है, क्या आप उसमे विश्वास रखते हैं? मैंने कहा विल्कुल रखता हू। उन्होंने कहा कि यह कैसे हो सकता है? आप मनुष्य के शरीर से कही मे भी दूध निकालकर वता दीजिये, तव हम मानेंगे कि यह सत्य है। हम मान लेंगे कि चण्डकौशिक ने डसा था और महावीर के अँगूठे से दूध प्रवाहित हुआ था। मैंने अमेरिका, जापान, इग्लैंड सव जगह भ्रमण किया है और वडे वड़े आपरेशन किये है, देखे हैं, लेकिन यही भी किसी भी आपरेशन को करते समय मुझे शरीर मे दूध नही मिला। तव महावीर स्वामी के शरीर से दूध कैसे निकल गया?

मैंने कहा कि आपकी बात बिल्कुल ठीक है। लेकिन एक प्रश्न पूछता हू कि स्त्रियो के स्तन से दूध कैसे बाहर निकलता है ? जब बच्चा पैदा होता है तभी निकलता है उससे पहले नहीं निकलता। वध्यास्त्री के स्तनो मे दूध कभी नहीं आता मातृत्व के उमडते ही स्तनो से दूध बह पडता है। बच्चे को दूर से देखकर भी कभी-कभी माँ के स्तनो से दूध निकल पडता है, क्या आप इस बात को मानते हैं ? उन्होंने कहा कि ये तो हारमोन के परिवर्तन से ऐसा हो जाता है और माँ का वात्सल्य बच्चे के प्रति होता है, इसलिये माँ के स्तनो से दूध बहा करता है। मैंने कहा कि माँ का एक बच्चे के प्रति ही केवल वात्सल्य होता है। एक बच्चे के प्रति होने वाले वात्सल्य से यदि स्तन से दूध निकल आता है तो जिस व्यक्ति के हृदय मे सारे ससार के प्रति वात्सल्य उमडता है, जिसके दिल मे अगाध करुणा है, दया है, उसके अँगूठे से यदि दूध निकल पडता है तो कौन से आश्चर्य की बात है। यह तो बिल्कुल सामान्य बात है अगर वैसी साधना हो तो।

महावीर ने बाद मे कैवल्य पाया। बहुत कुछ उपदेश दिये उनके पास सब कुछ था। लेकिन फिर भी चमत्कार न दिखा पाये। गौतम उनके पास आया। उसने देवी-देवताओ को, समवसरण को देखा, लेकिन वह उससे प्रभावित नही हुआ। लेकिन जब महावीर ने सत्य को प्रकट किया तो गौतम तो क्या उसके सारे शिष्य और दूसरे आचार्य भी प्रभावित हो गये। गौतम चमत्कार से प्रभावित नही हुआ सत्य से प्रभावित हुआ। प्रभावना सत्य से होती है चमत्कार से नही।

पैंतीस अतिशय और चौतीस वाणी इसको लोग कहते हैं चमत्कार नहीं है। यह तो तीर्थंकर की महिमा है। तीर्थंकर होने के कारण ये सब अतिशय घटित होते हैं। महावीर स्वामी स्वय ये अतिशय नही दिखाते, स्वय कोई चमत्कार नही दिखाते ये तो तीर्थंकर का स्वभाव है। यह तो तीर्थंकर पद की महिमा है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि श्रद्धा और आस्था मे अतिशयोक्ति की भावना आ जाती है। आचाराग सूत्र जैनो का सबसे पुराना लिपिबद्ध ग्रन्थ है। उसमे महावीर का जीवन दर्शन पढिये सच्चे महावीर का सच्चा जीवन-दर्शन वर्णित है। सच्चाई का वर्णन है, अतिशयता का वर्णन नही है।

हम आजकल कुछेक आचार्यो को युगप्रधान कहते हैं। लेकिन आज के युग-प्रधान पुरुष मे कोई भी अतिशय देखने को नहीं मिलता। यदि हम जिनदत्तसूरि अथवा अन्य आचार्य को जिनको हम कहते हैं कि ये चमत्कारी थे। तो आज के युग-प्रधानो मे भी चमत्कार होने चाहिए। लेकिन वे चमत्कार नही है। उपाध्याय देवचन्द्र ने तो युगप्रधान पद की महिमा बताते हुए कहा कि जो आचार्य युग-प्रधान है, वह यदि घर मे आ जाये तो सारा घर ही पवित्र हो जाता है। उनका यदि हम पैर धोलें, चरण पक्षालन करें और उस पानी को घर मे छिडकें तो शान्ति हो जाती है। यह

जिनदत्तसूरि का प्रभाव नही, यह युगप्रधानता का प्रभाव है। यह किसी आचार्य की शक्ति नही है, यह तो आचार्यत्व की शक्ति है अतिशय महावीर स्वामी की शक्ति नही है, यह तो तीर्थंकरत्व की शक्ति है तीर्थंकर की महिमा है।

हम लोग चमत्कार के पीछे पडे हैं। हम पूजा करते हैं चमत्कार के लिए। प्रार्थना करते हैं चमत्कार के लिए। दादा-वाडी जाते हैं चमत्कार के लिए। प्रार्थना करते हैं चमत्कार के लिए। हमारा मन ही कुछ ऐसा है कि हम चमत्कार को ही स्वीकार करते हैं। क्या यह कम चमत्कार है, कि जिस धर्म के प्रवर्तक चमत्कार को नही मानते थे, उस धर्म के अनुयायी केवल चमत्कार ही चमत्कार चिल्लाते हैं वे केवल चमत्कार को ही मानते हैं। उसी के आगे सिर नमाते हैं। इसीलिए तो चमत्कार को लोगो ने पूजा—प्रार्थना की अटूट कडी माना है। आप लोग पूजा मे बोलते हैं 'नमस्कार है चमत्कार को।'

आप मन्दिर गए, भोमियाजी को कहा अथवा भगवान् पार्श्वनाथ के गए अथवा और किसी के, और कहेगे—

हे भगवान ! मेरी घडी गुम हो गई है। दो हजार रुपये की घडी थी। यदि घडी मिल जायेगी तो दो रुपये का प्रसाद चढाऊँगा। महावीर स्वामी ऐसा नही कहेगे कि मेरा देवदुष्य खो गया है उसको वापस पाने के लिए मैं इन्द्र को पूजूँ, प्रसाद चढाऊँ। महावीर तो ऐसे वीर थे कि उन्होंने प्रसाद शब्द का कभी उल्लेख भी नहीं किया। यदि प्रसाद होता और प्रसाद से चमत्कार घटता तो इसका उल्लेख कही न कही जरूर ही आगम ग्रन्थो मे होता। हम दो रुपये का प्रसाद चढाकर दो हजार रुपये का चमत्कार चाहते हैं। यह घूसखोरी भगवान के दरबार मे प्रविष्ट भी नही होनी चाहिये।

मैं जब 'वाराणसी'—काशी मे था तो वहाँ मैं विश्वनाथ मन्दिर गया। भक्तो की भारी भीड। पुजारी पण्डे कह रहे थे कि यहाँ बाबा पर जो एक रुपया चढायेगा उसे विश्वनाथ बाबा लाख देंगे।

एक ग्रामीण आदमी आया। उसने जब यह सुना तो एक रुपया चढा दिया। पुजारी ने फिर वही अपना रटा-रटाया फार्मूला दोहराया। उस आदमी ने एक रुपया और चढा दिया। मैंने सोचा कि यह कौन-सा गणित है कि एक का सीधा लाख। पुजारी भी लोभ देता है। भला भगवान के यहाँ कोई टकसाल थोडी है। रुपया चढाने वाले लाखो हैं। भगवान से दरबार मे धन नही है, मन की शान्ति मिलती है। वह भी लाख बार प्रयास करो तब कही जाकर एक बार सफलता मिलती है। तो हम लोग चमत्कार को ही मानते हैं चमत्कार के ही वशीभूत हैं। महावीर स्वामी चमत्कार को नहीं मानते। वे चमत्कार मे विश्वास भी नही रखते।

हम महावीर स्वामी को भूल गये बाद मे कई आई हुई परम्पराओ को ले बैठे हैं। मैं चाहता हू कि हम महावीर के शुद्ध मार्ग को जानें। जैसे गणित मे है कि

एक और एक दो होते हैं, ऐसा ही महावीर का मार्ग है, उसमे कल्पना की उडानें नहीं गणित और विज्ञान का दर्शन होता है। अतः जब तक महावीर स्वामी के शुद्ध मार्ग को नही बताया जायेगा तब तक जैन धर्म का मार्ग अशुद्ध रहेगा हमारी शुद्धता के लिए शुद्ध मार्ग का दर्शन एव ज्ञान जरुरी है।

आज जैनधर्म मे जो परम्परायें फैली हुई है, वे परम्परायें वास्तव मे जैन धर्म की नही है भगवान् महावीर द्वारा निर्दिष्ट नही हैं, ये हमारी अपनी बनाई परम्परायें हैं। हमने ही बनाई है। सारे चमत्कार हमारे ही द्वारा बने बनाये हुए हैं। ये तीर्थंकर के बनाए हुए नही है।

तो इसलिए महावीर के जीवन मे ऐसा कोई भी प्रसग नहीं है, जिससे यह साबित हो सके कि भगवान महावीर ने चमत्कार दिखाया था या उनका चमत्कार में विश्वास था। कोई भी महापुरुष, कोई भी आत्म गवेषक निर्वाणाभिमुख व्यक्ति चमत्कार के फन्दे मे नही फँसा। उन्होने कभी चमत्कार दिखाया ही नही। महावीर के सारे उपदेश चमत्कार के विरोधी हैं। महावीर स्वामी के सारे उपदेश, सारे वक्तव्य ऐसे हैं जैसे स्वय महावीर थे। उन्होने तो जैसा सत्य था, वैसा कहा। महावीर नग्न रहे। जैसा अस्तित्व था वैसा व्यक्त किया। कोई वस्त्रावरण नही, कोई साज नहीं, कोई शृंगार नही, कोई सजावट नही, कोई काव्यता नही, बिल्कुल गणितीय हिसाब है वैज्ञानिक हिसाब है। काव्य मे शृंगार का आकर्षण है, नवजात उडती कल्पनाएँ हैं। और गणित और विज्ञान मे जैसा होता है, वैसा प्रदर्शित किया जाता है। महावीर गणितज्ञ और वैज्ञानिक भी थे, अध्यात्म जगत के। स्पष्टता, वैज्ञानिकता और प्रामाणिकता ही उनके वक्तव्यो की विशेषताएँ हैं।

हम चमत्कार को उनसे जोडकर बडी भूल करते हैं। चमत्कार को हटा दिया जाय, तभी महावीर स्वामी का विशुद्ध मार्ग बचेगा। मैं आपको जैन-परम्परा को उतना ही नही बताना चाहता, जितना मैं चाहता हू कि आप सब महावीर स्वामी के विशुद्ध मार्ग को समझें एक सद्गुरु और अर्हत्-तीर्थंकर की मूल बातो को समझें जो आदमी महावीर के विशुद्ध मार्ग को समझ लेगा वह सचमुच महावीर बन जायेगा, निजमे छिपे जिनत्व को प्राप्त कर लेगा। सच्चे अर्थों मे वह तभी सच्चा जैन हो पायेगा। उसके बाद मे चली आई हुई परम्पराओ मे जिनमे अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए, उनको यदि हम लिए बैठे रहेगे तो महावीर नही होगे। हम तो अपनी कायरता और प्रमत्तता के कोढ-रोग को महावीर के रत्नकम्बल के द्वारा ढँकते हैं, ओट लेते हैं, छिपा लेते हैं। चमत्कार को बिल्कुल हटा देना चाहिए। जिस दिन हम चमत्कार के पीछे पड़ना छोड देंगे, उस दिन से हम पायेंगे कि हमारी अन्तर्यात्रा शुरू हो गयी। हम अन्धनिष्ठा से मुक्त और आत्मनिष्ठा से युक्त हो गये।●

आचार-व्यवहार हो देशकालानुरूप

प्रवचन-समय

९ जुलाई १९८५

प्रवचन-स्थल

जैन भवन, कलकत्ता

प्रश्न हैं · हमारे आचार व्यवहार हमेशा एक जैसे हो या देश और काल के अनुसार उसमे परिवर्तन कर सकते हैं ?

यहूदियो की एक कथा है। एक फकीर था। उसकी एक वजारे ने काफी सेवा की। जिस पर प्रसन्न होकर फकीर ने वजारे को एक गधा भेंट किया। गधे को पाकर वजारा वडा खुश हुआ ! गधा स्वामी-भक्त था। वह वजारे की सेवा करता और वजारा उसकी। दोनो को एक दूसरे के प्रति वहुत प्रेम हो गया।

एक दिन वजारा माल-वेचने के लिए गधे पर दूसरे गाँव गया। दुर्भाग्य ऐसा कि गधा मार्ग मे ही वीमार हो गया। उसके पेट मे इतना तेज दर्द उठा कि वह वही पर मर गया। वजारे को अत्यधिक शोक हुआ गधे की मृत्यु पर। उसके लिए गधा क्या मरा, कमाकर देनेवाला एक साझेदार मर गया। आखिर उसने गधे की कब्र वनायी और कब्र के पास वैठकर दु ख के दो आँसू ढलकाए।

इतने मे ही उधर से एक राही गुजरा। उसने सोचा कि अवश्य ही यहाँ कोई न कोई किसी महान् फकीर का निधन हुआ है। श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए वह भी कब्र के पास आया और जेव से दो रुपये निकालकर चढा दिए। वजारा देखता ही रह गया। वह कुछ वोला नही, लेकिन मनोमन उसे हँसी अवश्य आ गई।

वह राही अगले गाव मे गया और लोगो से उस कब्र का जिक्र किया। ग्रामीण लोग आए। उन्होने भी यथाशक्ति पैसे चढाए। वजारे के लिए तो यह भी एक तरह का व्यवसाय हो गया। गधा जव जिन्दा था तव उतना कमाकर नही देता था जितना कि मरने के वाद दे रहा था।

खूव भीड लगती। जितने दर्शनार्थी आते कब्र का उतना ही ज्यादा विज्ञापन होता। और इस तरह गधे की कब्र किसी पहुचे हुए फकीर की समाधि हो गयी।

एक दिन वह फकीर भी उसी मार्ग से गुजरा, जिसने वजारे को गधा दिया था। उसने उस कब्र के वारे मे लोगो से चर्चा सुनी तो वह भी कब्र पर झुका। लेकिन जैसे ही उसने वहाँ अपने पुराने भक्त को वैठे देखा तो उससे पूछा कि यह कब्र किसकी है और तू यहाँ क्यों रो रहा है ? उस वजारे ने कहा कि अव आपके सामने सत्य को छिपाकर रखने की मेरे पास ताकत नही है अत सारी आपवीती सत्य कथा कह दी फकीर को। वडी हँसी आई फकीर को उसकी वात सुनकर। वजारे ने पूछा कि आपको हँसी क्यो आई ? फकीर वोला कि मैं जहाँ रहता हू वहाँ पर भी एक कब्र है जिसे लोग वडी श्रद्धा से पूजते हैं। आज मैं तुम्हें वताता हू कि वह कब्र इसी गधे की माँ की है।

इसी को कहा जाता है अन्धविश्वास। कुछ लोग अपनी आजीविका के लिए इन अन्ध विश्वासो को धर्म का मुकुट पहना देते हैं। और, इस तरह धर्म के नाम पर

अन्धविश्वास वर्धमान होते जाते हैं। जब तक ये अन्धविश्वास समाप्त नही होंगे तब तक धर्म का प्रकाश विस्तार नही पा सकता। सचमुच अन्धविश्वास के अन्धियारे को दूर करने के लिए विवेकशीलता का चिराग अपेक्षित है।

तुम उत्साह की बात करते हो
मगर
बेलगाम घोड़ा है
ज्ञानरहित उत्साह।
उत्साह सही हो
अन्यथा
क्षति ही क्षति है
अन्धे उत्साह से

अन्धा उत्साह और अन्धा विश्वास दोनो बिना लगाम के घोड़े हैं। उस घोडे पर बैठकर भीड भरे राजपथ पर दौडना खतरे से भरा है।

जो लोग अन्धे को मार्गदर्शक बना लेते हैं, वे अभीष्ट रास्ते से भ्रमित हो जाते हैं। लकीर के फकीर भी अन्धे होते हैं। वे दूसरो की आँखो के आश्रित होते हैं। जानते हैं आप कि लीक, लीक कौन चलता है? अन्धनिष्ठावान चलता है लीक-लीक।

लीक-लीक गाड़ी चले, लीक ही चले कपूत।
लीक छोड तीनों चलें, शायर, सिंह सपूत।।

अतः हमे अन्धविश्वासो को खदेडना है। हमे अनुकरण नही; सत्य का अनुसन्धान करना है। लीक-लीक नही चलना है। मुझे तो अन्धविश्वासो की छाया भी पसन्द नहीं है। मैं अन्धविश्वास का भी समर्थक नही हू। और उस मार्ग को अपनाने वालो को भी मैं अच्छा नही समझता। इसलिए धर्म एवम् सत्य की स्थापना के लिए अन्धविश्वासो को जड से उखाड फेंक देना चाहिए। प्रज्ञा के आधार पर।

अन्धविश्वासो की तुम्बी की बेलो को तो मूल से ही उखाडा जाता है, किन्तु धर्म के अगूर-तरुओ की आचार व्यवहाररूपी डालियो का तो देशकालानुरूप ही काट छांट किया जाता है। समय पर आवश्यकतानुसार अँगूरो पर कलम करना ही अगूरों की वृद्धि का तरीका है। इसी प्रकार हमारे आचार एव व्यवहारो मे भी यथावश्यक फेर बदल करने से लाभ ही है न कि हानि। आचार व्यवहार, की जीवन्तता तो देश-ल और परिस्थिति पर ही निर्भर है।

उत्तराध्ययन सूत्र चूर्णि मे तीर्थ करो के लिए कहा गया है कि देशकालानुरुपम् धर्मकथयन्ति तीर्थ करा'। तीर्थ कर भी देश और काल के अनुसार ही धर्म का उपदेश देते हैं। सामान्य दृष्टि से तो देशकाल और परिस्थिति को समझते हुए ही सारे आचार

और व्यवहारो का पालन किया जाता है, लेकिन स्वय तीर्थंकर भी देश और काल के अनुसार ही धर्म का कथन करते हैं।

हम स्वय हमारे जीवन मे ही देख लें। शरीर हमेशा एक जैसा नही रहता। वह कभी बढता है, कभी घटता है और कभी हम पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं। आचार और व्यवहार भी हमेशा एक जैसे नही होते हैं। उनमे परिवर्तन आता ही रहता है। इसलिए महावीर स्वामी ने उत्पात, व्यय और ध्रौव्य की त्रिपदी को हमारे सामने प्रस्तुत किया था। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनो ही उत्पात, व्यय और ध्रौव्य के ही प्रतीक है। जिस किसी भी वस्तु का जन्म होता है उसकी स्थिति भी होती है और वापस समापन भी होता है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। प्रकृति के इस नियम को मैं तो क्या, सभी लोग स्वीकार करते हैं और बडे विनम्रभाव के साथ। फिर चाहे वह जड हो या चैतन्य। जो कल राजा थे, वे आज निर्धन हैं और जो कल भिखारी थे वे आज धनवान् हैं। भारत की स्वतन्त्रता से पहले जो लोग निर्धन थे, वे नेता आज बडे-बडे पद पर और काफी समृद्ध देखे जाते हैं और जो राजा थे, वे आज असमृद्ध है। परिवर्तन की यह महिमा है। इसीसे ही क्षणमात्र मे सुख दुःख का स्थान ग्रहण कर लेता है और दुख सुख का स्थान ग्रहण कर लेता है। बढती-घटती, उतार-चढाव, ज्वार-भाटा ये सब प्रकृति के परिवर्तनशील धर्म हैं।

हर चीज हर समय के लिए एक जैसी नहीं रहती है। उसमे परिवर्तन आ ही जाता है। स्वय प्रकृति जिन वृक्षो को, फूलो, फलो और पत्तो को धारण करती है। एक दिन वह भी आता है जब प्रकृति उन्हे नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है। वास्तव में ऐसा होना भी चाहिए। जिन वृक्षो के पत्ते पीले पड गये हैं, उन्हे सजो-सजो कर रखने से नये पत्ते पैदा नहीं हो पायेंगे। उनके लिए जरूरी है कि वे पत्ते गिराए जाएँ। इसीलिए सुमित्रानदन पन्त ने कहा—

गा कोकिल बरसा पावक कण।
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन॥

पुरातन हमेशा अच्छा होता है ऐसी बात नही है, नवीन हमेशा अच्छा होता है, यह भी बात सही नही है। देश और काल के अनुरूप कभी प्राचीन भी बुरा हो जाता है और कभी नवीन भी घातक सिद्ध हो जाता है।

हम आज को ही क्यो लें। स्वय तीर्थङ्कर आदिनाथ से भी हम इस बात को जोडें तो भी यह बात बिलकुल सही प्रमाणित होती है कि हमारे आचार और व्यवहार देश तथा काल के अनुसार परिवर्तित हो सकते हैं। ऋषभदेव ने कठोर चर्या की अचेलक नग्नता को स्वीकार किया था लेकिन ऋषभ के बाद ही दूसरे तीर्थङ्कर अजितनाथ ने कठोर चर्या को मृदुचर्या मे परिवर्तित कर दिया था। अचेलक

परम्परा सचेलक परम्परा मे वदल गयी थी। क्योकि धर्म जव मनुष्य के लिए पालन करने योग्य नही रह जाता भारभूत तथा अस्वाभाविक हो जाता है तो उस धर्म मे कुछ परिवर्तन करना ही पडता है। दूसरे तीर्थङ्कर अजितनाथ से पार्श्वनाथ की परम्परा तक लगभग मृदु चर्या फिर कठोरचर्या मे वदल गयी थी। क्योकि उस मृदु-चर्या मे कई प्रकार के आघात और व्याघात आने लग गये थे। अत महावीर को देश तथा काल के अनुरूप ही अपनी चर्या को कठोर वनाना पडा।

महावीर स्वामी ही नही, उनके शिष्य गौतम और श्रमण केशी जव परस्पर मिले तो देश और काल के अनुसार परम्पराओ मे काफी परिवर्तन हुआ था। सबसे वडा परिवर्तन तो चातुर्याम धर्म का पचयाम धर्म के रूप मे परिवर्तित हो जाना है। स्वय तीर्थ कर ने भी देश और काल के अनुरूप ही आचार व्यवहार का उपदेश दिया। आचार और व्यवहार की उन्होने प्रेरणा दी, उसमे परिवर्तन भी किया। ऋषभदेव ने असी मसि और कृषि का उपदेश दिया, लेकिन महावीर स्वामी ने उसका उपदेश नही दिया। एक समय होता है, एक परिस्थिति होती है कि स्वय तीर्थङ्कर को भी उन सबके लिए प्रेरणा देनी पडती है। धर्म देश और काल के अनुरूप ही निर्मित हो जाता है। आचार और व्यवहार देश और काल के अनरूप ही परिवर्तित होने लग जाते हैं।

श्रमण-वर्ग के लिए लिखना बिलकुल निषिद्ध था। निशीथ सूत्र मे स्पष्ट रूप मे कहा गया कि साधु-वर्ग कलम के द्वारा लिख नही सकता। लेकिन देश और परिस्थिति को देखते हुए देवर्धिगणि को यह परम्परा और इस आगम आज्ञा दोनो को ही तोडना पडा और आगमो को उन्होने लिपिवद्ध करवाया। जैन धर्म मे देवर्धिगणि ही लेखनी चलाने वाले सबसे पहले आचार्य हुए और लेखनी चलाने वाले का जो निषेध था, उसको तोडने वाले भी देवर्धिगणि ही थे, लेकिन यह परम्परा का तोडना भविष्य के लिए वडा ही कल्याणकारी हुआ। आज यदि देवर्धिगणि उस परम्परा को नही तोडते, देश और काल की आवश्यकता के अनुसार आगमों को लिपिवद्ध नही करवाते तो आज महावीर स्वामी की वाणी एव जैन धर्म की परम्परा कुछ भी अवशेष नही रहती।

इसलिए देश और काल के अनुरूप आचार तथा व्यवहार मे परिवर्तन किया जा सकता है। यदि हम आगमो पर दृष्टिपात कर तो एक नही ऐसे सैकडो उदाहरण हैं, जिसमे देश और काल के अनुरूप आचार व्यवहार मे परिवर्तन किया गया था, जैसे कि हम पात्र को लें। सवसे पहले पाणिपात्र की ही प्रथा थी। साधु लोग हाथ मे भोजन करते थे, लेकिन इसमे परिवर्तन आया और आचारागसूत्र मे श्रमण को एक पात्र रखने का निर्देश दिया गया। कुछ समय के वाद वृहत् कल्प भाष्य आदि ग्रन्थो से पता चलता है कि आर्यरक्षित सूरि ने जव देखा कि एक पात्र मे असुविधा होती है, साधु जिस पात्र मे भोजन को उसी पात्र को शौच आदि अन्य आवश्यक क्रियाओ मे उपभोग

करें तो यह बात उन्हे अच्छी नही लगी और उन्होने दो पात्र रखने का निर्देश दिया। इस पर समाज मे काफी हो—हगामा हुआ होगा। लेकिन देश और परिस्थिति को देखते हुए आचार और व्यवहार मे परिवर्तन लाना ही पडता है।

श्रमण-वर्ग को तो हम एक किनारे रखें, समाज पर हम आयें। एक जमाना था जब पर्दा प्रथा नही थी। महावीर के समय मे पर्दा-प्रथा नही थी, उससे पहले तो थी ही नही। लेकिन महावीर स्वामी के बाद पर्दा-प्रथा आनी शुरू हो गयी और मध्य-काल मे तो पर्दा-प्रथा इतनी भयकर हो गयी कि स्त्री असूर्यम्पश्या हो गयी उसकी स्वतन्त्रता परतत्रता मे बदल गयी थी। एक जमाना था जबकि पर्दा नही था। एक जमाना आया जब पर्दा आया और आज वह जमाना आ गया है कि पर्दा-प्रथा वापस उठने लग गयी है। अब तो क्लब्स मे वस्त्रप्रथा ही हटने लग गयी है। इसी तरह से मृत भोज हुआ करता है। इसी तरह से हम दहेज प्रथा को ले सकते हैं, इसी तरह से हम विधवा-विवाह को ले सकते हैं, इसी तरह से हम ले सकते हैं सती होना यानी चिता मे जलकर मर जाना, इन सारी की सारी प्रथाओ मे समय समय पर परिवर्तन आया ही है। देश क्षेत्र और समय के अनुसार परिवर्त्तन होता ही गया।

आज भी कितने-कितने प्रकार के परिवर्तन हुए हैं हमारे आचार और व्यवहार मे। न केवल श्रावक वर्ग मे अपितु श्रमण वर्ग मे भी बहुत प्रकार के आचार और व्यवहार मे परिवर्तन आये हैं।

सौ वर्ष पूर्व कोई जैन साधु बम्बई नही जाता था। जब मोहनलाल जी महाराज बम्बई चले गये थे तो लोगो मे काफी हुडदग मची थी। बहुत से बडे-बडे आचार्य इसका विरोध करते थे कि कोई भी साधु बम्बई मे न जाये। लेकिन आज अनेक आचार्य लोग तरसते हैं बम्बई जाने के लिए कि एक चार्तुमास तो कम से कम बम्बई हो ही। आज समय की माँग है, उस क्षेत्र मे श्रमण वर्ग की आवश्यकता है। अत जाना जरूरी हो गया है। तो ये कोई गलत काम थोडी ही है कि श्रमण-वर्ग वहाँ जाता है।

इसी प्रकार मूर्तिपूजा को लिया जा सकता है। आज से लगभग पाँच सौ-सात सौ वर्ष पहले मूर्तिपूजा के साथ आडम्बर बहुत अधिक जुड गया था भक्तिवशात् भावपूजा गौण और द्रव्य-पूजा मुख्य हो गई। स्थानकवासी और तेरहपन्थी सम्प्रदाय के धर्मप्रवर्तकों ने क्रांति मचाई, जो कि जरूरी भी हो गई। यदि वे ऐसा न करते तो जैनत्व को बड़ा आघात लगता है। लेकिन वे अतिवादिता को छू बैठे, सीमा का उल्लघन कर दिया उन्होने। लक्ष्मण-रेखा खींची तो थी रक्षा के लिए मगर जब उसका उल्लघन करेंगे तो सिर पर खतरा आयेगा ही सीता की तरह। वस्तुत. भिक्षुगणि आदि को विरोध तो करना था द्रव्य-पूजा में समागत आडम्बर का, किन्तु वे मूर्ति

का ही विरोध कर बैठे। फेंकना था सडे हुए फलो को, किन्तु उन फलो के साथ रहे अच्छे फलो को भी फेंक दिया। उनमे यदि प्रखर प्रज्ञा होती तो वे शराव की दूकान के किनारे गिलास मे दूध पीने वाले व्यक्ति को शरावी नही समझते। वन्दर को उडाना तो था मक्खी को, जो राजा की छाती पर बैठी थी मगर जव न उडी तो उसने मक्खी पर तलवार चलायी। बिचारा वन्दर उतनी दूर की कैसे सोचेगा कि मक्खी पर तलवार मारने से राजा भी मर जायेगा। मक्खी पर हाथ से मारने की जरुरत थी, तलवार से नही।

पूर्वजो की सतति अच्छी निकली। यह अहोभाग्य की वात है। आज मैं देखता हूँ कि वहुत से स्थानकवासी और तेरापन्थी इस वात को समझ चुके हैं। कुछेक कट्टरपन्थियो के कारण वे मूर्तिवाद का सार्वजनिक रूप से समर्थन नही कर पा रहे हैं। मगर अधिकाश स्थानकवासी वगैरह लोग व्यक्त-अव्यक्त रूप मे स्वीकार करने लग गये हैं। स्तूप, चित्र, आदि के रूप मे तो खैर स्वीकार करते ही हैं। जो कि मूर्ति की मान्यता का ही मात्र एक रूपान्तरण है। सुना जाता है कि आचार्य तुलसी जैसे मूर्तिपूजाके विरोधी सम्प्रदाय वालो ने भी राजस्थान के दो-चार जैन मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाया है। अव तो अनेक अमूर्तिपूजक साधु-साध्वियाँ, श्रावक-श्राविकाएँ जैन मन्दिरो मे, जैन तीर्थों मे दर्शन-वन्दन-पूजन भी करने जाते हैं। उनका विरोध नही है। अच्छी वात है यह। वस्तुत सत्य को ठुकराया नही जा सकता। इतिहास पर लात नही मारी जा सकती। एक समय मे मूर्ति का समर्थन, फिर विरोध और अव वापस समर्थन—यह सव देशकालानुरूप परिवर्तन है।

एक समय था जव कोई साधु लाउडस्पीकर पर वोलता तो समाज मे काफी हो हल्ला मच जाता। वडे-वडे लोग इसका विरोध करते थे। मैंने सुना है कि भीलवाडा मे जव सुशीलकुमार जी का चातुर्मास था तो वे लाउडस्पीकर पर वोलने लगे। आचार्य तुलसी जी ने इसका विरोध किया। वह एक समय था उस समय उसका प्रचलन नही था, लेकिन उन्होने जव इसकी उपयोगिता समझी तो वे सभी वडे धडल्ले के साथ अव लाउडस्पीकर मे वोलते हैं।

इसी तरह जैसे सपनो की वोलियाँ होती हैं चैत्यवासियो ने सपनो की वोलियो का प्रचलन किया। इसमे है कुछ भी नही। जिस दिन कल्पसूत्र पढते हैं उस दिन न तो सपने दिखाई दिये त्रिशला रानी को और न महावीर का जन्म हुआ। मन्दिर सचालन या मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिए या अन्य कार्यों को दृष्टि मे रखते हुए इस प्रथा को उपयोगी समझा गया। लोग कम से कम पर्युषण मे अवश्यमेव ही अपने धर्मस्थानो मे पहुँचते हैं। अत मन्दिरो के जीर्णोद्धार इत्यादि कार्य करवाने के लिए इस परम्परा मे कुछ न भी होते हुए भी चालू रखा गया। इसकी उपयोगिता थी, इसीलिए चालू रखा गया। आज भी इसकी उपयोगिता है। इसीलिए चालू ही रखा जा रहा है।

इस तरह हम कोई भी प्रथा को ले लें देश और काल के अनुसार न केवल आचार और व्यवहार मे अपितु हर चीज मे परिवर्तन आया ही आया है। लेकिन वह परिवर्तन तभी करना चाहिए जब उस परिवर्तन के द्वारा उसका भविष्य कुछ लाभदायक सिद्ध होता हो। केवल नवीनता के आग्रह मे अपनी प्राचीन परम्परा को तोड देना भी अच्छा नही है। पुराना हमेशा कूडा-कचरा होता है, यह बात कहनी भी अच्छी नही है। आजकल विज्ञान को पूर्णरूपेण सही कहना यह भी बात अच्छी नही है यदि अणुबम या चार सौ बीस टन का एक हाइड्रोजन बम गिर जाय तो जो आदमी विज्ञान को अच्छा बताते हैं वे लोग ही भस्म हो जायेंगे और शेष लोग विज्ञान का नाम सुनते ही कांप उठेंगे।

नवीन चीज हमेशा अच्छी नही होती और पुरानी चीज हमेशा बुरी नही होती लेकिन पुरातन का मोह भी अच्छा नही है और नवीनता का आग्रह भी अच्छा नही होता। एक समय होता है जब वर्षा होती है तो अच्छा लगता है। चारो तरफ अकाल है, सूखा पड गया है उस समय यदि वर्षा होती है तो वर्षा उपयोगी है। उस समय वर्षा किस काम की जब चारो तरफ बाढ ही बाढ आयी हुई हो। समय के अनुसार ही वर्षा अच्छी लगती है। होली के दिन लोग रग डालते हैं। वह होली के दिन ही अच्छा लगता है। दीपावली के दिन उन रगो से सने हुए वस्त्र यदि कोई पहनता है तो वे रग भरे वस्त्र बडे बुरे लगते हैं। शिव अपने समय ही कल्याणकारी होता है, जब वह बिगड जाता है तो बडा प्रलय मचा देता है। उसका ताडव नृत्य ससार के लिए बड़ा विनाशकारी हो जाता है। अत देश और काल के अनुरूप ही प्रत्येक चीज मे परिवर्तन होता है। देश और काल के अनुरुप ही प्रत्येक कथन में परिवर्तन होता है। यदि परम्परा अच्छी नही है तो उन्हें तोडकर नये को ग्रहण कर लेना चाहिए।

अब बहुत से लोग ऐसे भी है जो नयी चीज अच्छी होते हुए भी नयी चीज को ग्रहण नही करते बस पुराने को ही पकडे रहते हैं। यह यथार्थत दुराग्रह है। जिस व्यक्ति की आंखो पर दुराग्रह की पट्टी बन्धी है, उसे वास्तविक तथ्य का सम्यक् दर्शन नही हो सकता। इस पट्टी को बांधकर चलना भूल-भुलैया के अन्ध गलियारो मे भटकना है। इसलिए सत्य के राजमार्ग को पाने के लिए उबरना अनिवार्य है। सारहीन को परित्याग करने मे उलझन नही होनी चाहिए। जैसे शरीर भोजन लेता है साथ ही उत्सर्ग करता है। अगर ऐसा न हो तो शारीरिक क्रियाएँ नही हो सकती, बन्द हो जाएगी। बचपन मे जो पैन्ट-कोट पहनते थे, उन्ही को सारे जीवन मे नही पहना जा सकता। नया पैन्ट-कोट सिलाना ही पडेगा।

नयी चीज अच्छी है तो उसको भी ग्रहण करना पडेगा। नई चीज हमेशा बुरी नही होती, उसमे हैं कोई अच्छी बात भी होती है।

वस्तुतः हम जिस युग पैदा हुए हैं हमारे लिए तो वही युग सबसे अच्छा है। महावीर स्वामी के लिए उनका अपना युग अच्छा था। हमारे लिए तो वही युग अच्छा है, जिस युग मे हम जीते हैं। इसीलिए हम अपने युग पर लाछन नहीं लगा सकते हैं। ठीक है महावीर और ऋषभदेव के माता पिता बहुत उच्च थे लेकिन इसका यह मतलब नही कि हमारे माता-पिता नीच हैं। उनकी अपनी कोटि होती है हमारे माता पिता की अपनी कोटि है। अपने-अपने स्थान पर दोनो ही उच्च हैं। पुरातन भी अच्छा है, नवीन भी अच्छा है दोनो ही अच्छे हैं अपनी अपनी उपयोगिता के समय।

अब जैसे कि राजेन्द्रसूरि ने एक परम्परा को तोडा। परम्परा चली आ रही थी चार थुई की। यानी चार स्तुति बोलते थे। राजेन्द्रसूरि की बात काफी तर्क पूर्ण है। लेकिन लोग स्वीकार नही कर सकते। उन्होने तीन थुई का प्रचलन शुरू किया उनका कहना भी ठीक था एक सीमा तक कि सामायिक मे प्रतिक्रमण मे देवी-देवताओ का आह्वान करना और 'पुत्र कलत्र बहुवित्त' इत्यादि शब्दो का उच्चारण करना सामायिक जैसी आध्यात्मिक प्रक्रियाओ मे अच्छी बात नही है।

सामायिक मे देवी-देवताओ की स्तुति की परम्परा को उन्होंने तोडा। त्रिस्तुति-परम्परा बनी। लेकिन लोग चौथी स्तुति को क्यो पकडे हुए हैं इसका भी अपना कारण है। यदि वह वास्तव मे फालतू ही होती तो लोग उसे छोड भी देते। ऐसे क्रातिकारी आचार्य कम होते हैं। आचार्य राजेन्द्रसूरि का कथन अपनो सीमा तक ठीक था। लेकिन दूसरे मूर्तिपूजक जैन लोग फिर भी चौथी थुई को क्यो बोलते हैं, इसे समझें।

वस्तुतः श्रावक जब साधना मे सलग्न होता है तो स्वाभाविक है कि जब वह आत्मरमण करेगा, आत्मसाधना और ध्यान-योग मे तल्लीन होगा तो कोई उपसर्ग, परिताप भी आ सकता है। कोई असुरीय-परीषह भी आ सकता है। इसलिए श्रावक चतुर्थ-स्तुति के द्वारा देवी-देवताओ का आह्वान करते हैं ताकि हम जो साधना कार्य कर रहे हैं, उसमे कोई तरह से विघ्न न आ जाय। यदि विघ्न आ जाता है तो हमने जो चतुर्थ स्तुति बोली है उसके द्वारा वह विघ्न दूर हो जाय। लक्ष्मण ने तो यही किया था। लक्ष्मण ने रेखा खीच दी थी। सीता रेखा से कही बाहर न निकल जाय इसलिए वह रेखा खीची गयी थी। जो रेखा खीची जाती है उसका अपना उद्देश्य होता है। प्रत्येक रेखा किसी न किसी भावी शुभ के लिए खीची जाती है। कालकाचार्य ने पञ्चमी सवत्सरी की परम्परा को बदलकर चौथ की परम्परा चलायी। आज यदि उस परम्परा को कोई वापस पचमी मे बदलता है तो वह कार्य गलत नही माना जायेगा। वैसे तो सवत्सरी तीज की कीजिए चौथ को कीजिये और चाहे दूज को कीजिए और चाहे रोजाना कीजिए उसमे कोई फर्क नही पडता है। धर्म-ध्यान के लिए, साधना के लिए तो सारे दिन एक जैसे ही होते हैं। इसलिए यदि कोई उपयोगिता समझता है सवत्सरी की चौथ को वापस पञ्चमी मे करने की तो वह कार्य भी अच्छा है।

एक परम्परा तो बडी विकास अवरोधक है और वह साध्वियो के प्रवचन के सम्वन्ध मे। वहुत से गच्छ वाले साध्वियो का प्रवचन देना एव उनका प्रवचन सुनना अनुचित समझते हैं। तपागच्छ आदि मे तो श्रावक लोग साध्वियो को वन्दना करना भी गलत मानते है। यदि साध्वियो के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है तो हम यह कैसे कह सकते हैं कि महावीर भगवान ने नारी जाति का उद्धार किया और उसे भी एकाधिकार रखने वाले मानव के समान ही सामाजिक एव आध्यात्मिक क्षेत्र मे एकसम स्थान दिया। मल्ली ने स्त्री होते हुए भी तीर्थङ्करत्व प्राप्त किया। साध्वी मृगावती ने कैवल्य प्राप्त किया। साध्वी चन्दना ने प्रवर्तिनी पद को अलकृत किया। साध्वी याकिनी ने हरिभद्रसूरि को पथभ्रष्ट होने से वचाया। महारानी विक्टोरिया इन्दिरा-गाधी, एलिजावेथ, टेरेसा ये सारी नारियाँ हैं किन्तु इनकी महनीयता सर्वविदित हैं। साध्वी कनकप्रभा श्री, मणिप्रभा श्री, मृगावती श्री, जैसी विदुषी और प्रखर वक्त्री जैन साध्वियाँ तो आजकल जैन समाज पर छाई हुई हैं। ऐसी स्थिति मे साध्वियो को प्रवचन और वन्दन का निषेध वास्तव नारी जाति का अपमान है। और अपमान करने वाले भी हम ही लोग हैं, जो उसी की रत्नकुक्षी से उत्पन्न हुए हैं। यह कैसा दुर्भाग्य है ? मैं वहुत से पुरुषो के मुँह से तुलसीदास का एक पद्य वहुत वार सुनता हूँ—

ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी। ये सब ताडन के अधिकारी॥

मैंने सुना है। एक पति ने यही पद अपनी पत्नी से कहा और पूछा कि क्या तुम इसका अर्थ जानती हो ? पत्नी ने कहा इसका अर्थ तो विलकुल स्पष्ट है। इसमे एक जगह मैं हूँ और चार जगह आप।

तो मैं तो यही कहूगा कि आज के प्रगतिशील युग मे हमे साध्वियो को सार्वजनिक प्रवचन देने की छूट देनी चाहिए और उनके चारित्र को महत्व देकर उनका आदर-सत्कार भी करना चाहिए।

आशय यह है कि पुरानी परम्परा कोई भी तोडे लेकिन परम्परा तभी तोडनी चाहिए जव उसके द्वारा हजार गुना लाभ होता हो। मेरी तो प्राचीन के प्रति कोई घृणा अथवा राग भावना नही है और नवीन के प्रति कोई दुराग्रह भी नही है। मैं तो कहता हूँ नवीन को भी ग्रहण करना चाहिए और प्राचीन को भी। प्राचीन परम्परा को तोडना नही है, अपितु प्राचीन परम्परा के मन्दिर का जीर्णोद्धार करना है। उसका पुनरुद्धार करना है, ताकि जो परम्परा आज प्राण से शून्य हो गयी है उस परम्परा मे वापस प्राण प्रतिष्ठा हो जाये। उसमे रक्त का सचार हो जाये। वह मन्दिर भी उतना ही सुन्दर वन जाये, आज भी जितना कि आज से हजारो साल पहले भी था। 'मेरे विचार से न तो प्राचीन अच्छा है, न नवीन वुरा है और न नवीन वुरा है, न प्राचीन अच्छा है। प्राचीन और नवीन दोनो का विवेकमूलक समन्वय ही हम सव के लिए कल्याणकारी, हितकर सिद्ध हो सकता है।'

अत' इस दृष्टि से यदि परिवर्तन करना जरुरी है तो परिवर्तन करना भी चाहिए। किन्तु कुछ लोग तो ऐसे होने हैं जो परिवर्तन तो करते हैं लेकिन वाहर में दिखाते हैं कि हम तो उसी परम्परा पर चल रहे हैं। वाहर से तो डींगे हांकते हैं लेकिन भीतर से सव कुछ वदला हुआ है। क्या फर्क पडता है यदि वाहर के चोले को भी वैसा ही कर दें जैसा भीतर का चोला है। जैसे कि उदाहरण दूं—कुछ परम्पराएं जैन धर्म मे यह वात कहती है 'कि धर्मशाला वनाना या मन्दिर वनाना ये सव पाप के काम है। मन्दिर वनाते हैं, या मूर्ति वनाते हैं, तो पृथ्वीकाय की हिंसा हुई, अभिषेक किया अप्काय की हिंमा हुई, दीपक जलाया,अग्नि व वायु की हिंसा हुई, फूल चढाये, वनस्पतिकाय की हिंसा हुई। ठीक है हिंसा हुई मान लिया। लेकिन एक वात पूछता हूं कि जो लोग यह वात कहते हैं उनको कहिये यदि तुमने मकान वनाया है तो तुम देखते नहीं हो कि नालन्दा का विश्वविद्यालय खण्डहर हो गया। इतने वडे-वडे राजमहल थे, आज सव पर कौवे वोलते है फिर तू मकान क्यो वना रहा है ? फिर मकान वनाने का हिंसामूलक कृत्य क्यो कर रहे हो। ई ट, चूना, पत्थर को सजाकर उस पर क्यों गुमान करते हो ? खैर चलो माना कि मकान शरीर की आवश्यकता है। तुम धर्मशाला क्यो वनाते हो ? जव एक तरफ कहते हो कि धर्मशाला वनाना है पाप है तो फिर उसको 'धर्मशाला' क्यो कहते हो 'पापशाला' क्यो नही कहते। जवकि दुनिया मे ऐसा कोई मूर्ख आदमी नही जो धर्मशाला को पापशाला कह दे। लोग उसको धर्मशाला ही कहेंगे। लेकिन धर्मशाला वना करके भी कहेगे कि धर्मशाला वनाना पाप है। वे पाप का पुतला खुद वनाते हैं। मैं कहता हूं कि धर्मशाला के वाहर वोर्ड लगाना चाहिए 'पापशाला' जवकि वोर्ड लगाते हैं धर्मशाला का।

नवीन को ग्रहण भी करते हैं लोग. और पुराने का ढोल भी पीटते हैं। यदि नई चीज अच्छी हैं तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए और यदि पुरानी चीज वुरी है तो उसको छोड देना चाहिए। नई चीज वुरी है तो उसको छोड देना चाहिये पुरानी चीज अच्छी है तो उसको ग्रहण कर लेना चाहिए। फूल का ग्रहण होता है, कांटो को ग्रहण कर क्या करेंगे। अपने लिये और दूसरो के लिए, दोनो के लिए दुःखकर है कांटे तो। वास्तव मे सत्य किस परम्परा मे है, इसको देखना है। परम्परा क्या है, यह नहीं देखना है। किस परम्परा मे, किस वस्तु मे सत्य का दर्शन होता है, कौन सी परम्परा आत्मा के लिए, समाज के लिए सवके लिए कल्याणकारी है, वही परम्परा हमे अपनानी है। प्राचीन और नवीन दोनो का विवेकमूलक समन्वय करते हुए हमे देश और काल के अनुरूप आचार-व्यवहार मे यदि परिवर्तन तथा परिवर्धन भी करना पड़े तो हम उसका नि सकोच परिवर्धन करें। नवीनता मे अगर सार है तो वह उपादेय है। तथ्यरहित प्राचीनता भी हेय है। 'सार-सार को ग्रही रहे, थोथा देइ उडाय। असार तत्त्व को पकडकर क्या करेंगे ? सारतत्त्व को ग्रहण करें। जिसमें सत्य है, वह

सब ग्राह्य है फिर चाहे वह प्राचीन हो या नवीन। जैसे सांप कचुकी को छोडता है वैसे ही हमे भी निस्सार तत्त्व के प्रति व्यामोह नही रखना चाहिए। क्षेत्र और समय की आवश्यकतानुसार हम अपने आचार-व्यवहार मे परिवर्तन कर सकते है जो कि नीति सम्मत है।

नीति का लोहा
चित्त की भट्टी मे
चिन्तन की अग्नि मे
परितप्त कर
संयोजनात्मक कदम बढाकर
पीटो,
बुरी तरह पीटो
परिमार्जन के हथोडो से
स्वय लोहार बन
अन्धविश्वास,
पुरानी परम्पराओ के रजकण,
नव निर्माण के सांचे मे
ढ़ाल दो उसे।
उपस्थित होगा
एक नया रूप,
परिष्कृत संस्कृति का स्वरूप। ●

पदयात्रा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

प्रवचन-समय

११ जुलाई १९८५

प्रवचन-स्थल

जैन भवन, कलकत्ता

प्रश्न है : आज विज्ञान के युग मे जव आवागमन के द्रुतगामी साधन उपलब्ध हैं और मनुष्य शब्द का गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है, तव पदयात्राओ के महत्व का प्रतिपादन करना क्या युक्ति सगत है ?

आज का युग विज्ञान युग कहा जाता है। किन्तु युग कोई आज का युग नही है। हजारो साल पहले भी विज्ञान का युग था। जिन-जिन चीजो का आज आविष्कार हुआ है उन सभी वस्तुओ का, उन सभी आविष्कारो का मूल स्रोत वहुत पहले ही कहा जा चुका है, लिखा जा चुका है। विज्ञान ने ऐसा कोई भी आविष्कार नही किया जिसके वारे मे सक्षिप्त अथवा विस्तृत रूप मे प्राचीन ग्रन्थो मे उल्लेख न हुआ हो। मूल आधार तो प्राचीन काल का ही है, वीज तो पहले का ही है आज का विज्ञान केवल उसे अकुरित करता है। वीज वहुत पुराना है, अनादिय है।

हम कोई भी उदाहरण ले सकते हैं, जैसे प्रश्नकर्त्ता के अनुसार आवागमन के द्रुतगामी साधना। किन्तु ये कोई आज के आविष्कार नही है। इनके वारे मे हमने अनेक शास्त्रो मे अनेक ग्रन्थो मे कुछ न कुछ उदाहरण अवश्य पाये हैं जैसे विमान। रामायण मे उल्लेख है कि हनुमान सात समुद्रो का उल्लघन करके, सात समुद्रो को पार करके सीता तक पहुँचे अथवा जव लक्ष्मण मूर्छित हो गये तव हनुमान आकाश मार्ग से सजीवनी वूँटी लेने के लिए पहुँचे। हवा मे उडने की कल्पना, मनुष्य हवा मे भी उड सकता है, ऐसी अवधारणा हजारो साल पहले आ चुकी थी। हमने तो उन्ही नियमो के आधार पर एक नये ढग का विमान वना लिया। निश्चित रूप से आज विज्ञान ने हमे द्रुतगामी साधन उपलब्ध कराये हैं। अव मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है।

हालाकि विमान यात्रा यह कोई निन्दनीय नही है। आकाश से चलना इसकी हम पूर्णरूपेण निन्दा नही कर सकते। ऐसे अनेक-अनेक उदाहरण है जिनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन ऋषि महर्षि आकाश मे चलते थे, आकाशचारी होते थे। वे गगन मे विहार करते थे। अन्तर इतना ही है कि वे अपना तप शक्ति के आधार पर-स्वशक्ति के आधार पर ही आकाश मे उडते थे और हम पराधीन होकर आकाश मे उडते है। आकाश मे वे भी उडते थे इसलिए आकाशचारी कहलाते थे। एतदर्थ हम यह तो कह ही नही सकते कि हवा मे चलना, गगन मे विहार करना गलत है। पानी की नौका मे, जहाज मे, केवल महावीर ही नही वलिक उनके पश्चात् होने वाले आचार्यों और मुनियो ने भी नौका जहाज इत्यादि का प्रयोग किया था। ऐसे ढेर सारे उदाहरण है हमारे पास जिनमे मुनियो द्वारा नौका का उपयोग किया गया है। महावीर स्वामी स्वय नौका मे चढे थे फिर भी वे जिन्दगी भर पदयात्रायें ही करते रहे। नौका का यदि वे

उपयोग नही करते तो उनकी पद-यात्रायें अवरुद्ध हो जाती अत नौका का उपयोग अनिवार्यता होने पर ही किया जाता था। मैंने भी किया है जियागञ्ज-अजीमगञ्ज दोनो के वीच मे नदी है, किन्तु पुल नही है। अत नौका का उपयोग हुआ। पहले जो मुनि आकाशचारी थे, वे आकाश मे तभी उडते जवकि अत्यन्त ही आवश्यक हो जाता कि यदि हम इस सिद्धि का उपयोग नही करेंगे तो किसी वडे कार्य से लाभान्वित न हो पाएँगे।

जैन आचार्य तो यहाँ तक कि भगवान की पूजा करने के लिए पुष्पलाने हेतु भी आकाश मे उडे और पुष्प लाये स्वय अपने साथ मे पुष्प लेकर आये, लेकिन वह एक परिस्थिति थी। उन आचार्यो के लिए जैन धर्म के गौरव की रक्षा करने के लिए उन्हें ऐसे कार्य भी करने पडे जो उनके लिये अकरणीय हैं।

प्रश्न ठीक है कि मनुष्य शव्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है।

वस्तुत. यात्रा मनुष्य का स्वभाव वन गया है। जैसे ही यात्रा रुकी वैसे ही मोक्ष हुआ। जव तक यात्रा है तभी तक उसका जीवन है उसका अस्तित्व है, उसकी गति है, प्रगति है। यात्रा रुकी कि उसका परिश्रम रुक गया। यात्रा की व्याकुलता, यात्रा कि विह्वलता, यात्रा का कष्ट और दुख सव कुछ समाप्त हो जाता है।

चली आ रही है
ससार की यात्रा पर
दूर सुदूर से
निरन्तर गतिशील
जीवन की नौका
छू छू कर
जन्म मरण के
जर्जरित तटो को।
सुदीर्घ काल की यात्रा से
यात्रा की विकलता से
विह्वल, व्याकुल
मुक्ति वोध होगा
इसी अन्तस्-चेतना से
प्राप्त होगा जिस क्षण
आत्मा का द्वीप।

आज मनुष्य केवल शव्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। वह केवल शव्द की गति से यात्रा करना ही नही चाहता उसकी तो इच्छा है कि वह

मन की गति से यात्रा करे। शब्द तो कब पहुंचेगा। लेकिन मनोगति उससे भी पहले पहुँच जायेगी। राकेट, अपोलो हवाई लूना इन सबसे पहले पहुँचेगा हमारा मन। मनुष्य तो चाहता है कि मैं मन की गति की तरह पहुँच जाऊँ किन्तु चाहने से ही तो कुछ नही हो सकता। चाहना और करना दोनो मे बडा अन्तर हो जाता है। चाहता तो बहुत कुछ है। शब्द की गति से पहुँचना चाहता है। शब्द की गति यह बिल्कुल वैज्ञानिक परिभाषा आ गयी। शब्द मे भी गति है। विज्ञान ने यह स्वीकार कर लिया शब्द जो हम यहाँ बोल रहे हैं वह केवल जैन भवन मे ही नही है, वह निखिल ब्रह्माड मे शब्द पहुँच रहा है। सारे ससार मे जहाँ तक ससार है वहाँ तक यह बोला जाने वाला शब्द पहुँच रहा है। केवलज्ञानी-परम ज्ञानी कोई अपने ज्ञान के द्वारा उन शब्दो को पकडते थोडे ही हैं। शब्द तो तरगित होते हैं, ध्वनित होते हैं।

आप तालाब के पास जाइये एक छोटा सा ककड लीजिये और तालाब मे फेंक दीजिए। ककड के द्वारा जो लहरें उठेंगी, वे लहरें उतनी दूर तक जायेंगी जहाँ तक तालाब है। तालाब का जहाँ तक पानी है वहाँ तक उसकी तरगें पहुँचेंगी। महावीर ही एक ऐसे हुए सबसे पहले जिन्होने कहा कि शब्द मे गति है। उनके पहले जितने भी दर्शन हुए, सब यही कहते थे कि जहाँ तक शब्द सुनाई पडता है वही तक शब्द पहुँचता है। लेकिन आज विज्ञान ने यह बात स्वीकार कर ली है, प्रमाणित की है कि बोला जाने वाला शब्द हवा की तरङ्गो के साथ सारे ससार मे पहुँचता है। केवलज्ञानी-परमज्ञानी उन शब्दो को बीच मे ही पकड लेते हैं।

टेलीविजन है। यहाँ पर चित्र कोई नही है लेकिन टेलीविजन की मशीन चलाई जाए, चित्र सामने आ जाएगा इसी तरह से रेडियो को ले लें। वैसे ही जो परम ज्ञानी-केवलज्ञानी हैं, उनकी आत्मा मे वे शब्द प्रतिध्वनित होगे। जो प्रश्न पूछा जायेगा उसका उत्तर देने के लिए परम ज्ञानी को प्रयास नही करना पडता वह स्वत अनायास ही निकलना है। परम ज्ञानी पूर्वभव बताते हैं। परम ज्ञानी कोई फालतू थोडे ही है कि आप पहुच जाइए और कहे कि मेरा पूर्व जन्म कहाँ हुआ था और फिर वे अपने ज्ञान बल के आधार पर आपके लिए भटकें और दस मिनट समय खराब करें। परम ज्ञानी व्यक्ति से तो आपने पूछा कि इस आत्म टेलीविजन मे अपने आप सारे चित्र आ जाते हैं। आत्मा के दर्पण मे अपने आप सब कुछ प्रतिबिम्बत होने लगता है। सारे चित्र इसलिए कह दिये जाते हैं बिना प्रयास के। प्रयास नही होता परम ज्ञानी मे। यदि प्रयास रहा तो परम ज्ञानी कभी नही हुआ। वे तो निस्प्रयास होते हैं।

दुनियाँ मे जितने महापुरुष हुए, जिन्होंने शब्द की गति के विज्ञान को जाना, उन्होंने कभी कोई शास्त्र नही लिखा। कृष्ण, महावीर, बुद्ध किसी ने भी नही लिखा स्वय। कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया, किन्तु उसे लिखा नही। महावीर ने

गौतम को वक्तव्य दिये, मगर उसे ग्रन्थो मे आवद्ध नही किया। वुद्ध ने आनन्द से हुई वातो को कभी लिपिवद्ध नही किया। उन्होने तो वस कहा। वस्तुत उन मनीषियो को यह ज्ञात हो गया था कि हम जो कह रहे हैं वह ग्रन्थो से भी अधिक चिरकाल तक रहेगा। ग्रन्थ काल-कवलित हो सकते हैं, शव्द तो स्थायी हैं। न काटे जा सकते हैं, न जलाये जा सकने हैं, वे तो सुने जा सकते हैं। इसीलिए महापुरुषो के शव्द आज भी जीवित हैं। परिव्याप्त हैं वे ससार मे विद्युत् तरगो की भाँति। आज भी यदि हम चाहे तो कृष्ण, महावीर, वुद्ध के शव्दो को सुन सकते हैं।

शव्द हर जगह पहुचता है। इसीलिए मनुष्य शव्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। यात्रा यह वहुत अनिवार्य है। यात्रा शिक्षा का एक साधन है। अनेक-अनेक स्थानो मे जाने से अनेक-अनेक स्थानो के दर्शन से हमारे ज्ञान मे अभिवृद्धि होती है। यूरोप मे तो विद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने के वाद जव तक यात्रा नही की जाती तव तक शिक्षा को अधूरी समझा जाता है। इसीलिए हम देखते है इन सडको पर कि वहुत से विदेशी लोग, नवयुवक लोग यहाँ पर पहुचते हैं। और देश का पर्यटन करते है, देश की सस्कृति को पहचानते हैं। असली शिक्षा तो इस पर्यटन से मिलती है, स्वय के अनुभव से, स्वय के देखने से मिलती है न कि केवल पढने से। भारतीय लोग कितने हैं जो विदेशो मे जाकर गली-गली मे भटके। लेकिन विदेशी लोग भारत मे पहुँचते हैं दूसरे देशो मे भी पहुँचते हैं। पर्यटन के वल ज्ञान हासिल करते हैं।

विना यात्रा की शिक्षा पूरी होती ही नही है। हिमालय के वारे मे हमने पढा हिमालय वर्फ से आच्छादित है, गौरीशकर के पहाड है। इतना सुन्दर है हिमालय कि देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जायेगा। पढ लिया हमने कितावो मे यह सव किन्तु वह शिक्षा तभी हम सम्यक रूपेण समझ पायेंगे जव हम स्वय हिमालय मे चले जायेंगे कितावो मे हिमालय के वारे मे जो हमने पढा और जो हम स्वय हिमालय पर जाकर देखेंगे उसमे जमीन आसमान का फर्क होगा। कितावो मे पढी हुई शिक्षा कल भूल जायेंगे लेकिन आँखो से देख कर पायी गयी शिक्षा हम जिन्दगी भर मरते समय तक नही भूलेंगे।

मनुष्य शव्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है और मैं समझता हूं कि यात्रा निश्चित रूप से जरूरी है। मैं स्वय भी पाँच साल से यात्रा कर रहा हू निरन्तर। तो मुझे इसके अनुभव हुए हैं कि यात्रा अनिवार्य है और जिसमे भारत जैसे देश मे जो कि नदियो और पहाडो का देश है, प्रकृति की सुषमा से भरा-पूरा है, तीर्थ-महिमा से मडित है उसमे पद यात्रा करना कितने आनन्द की वात है। पदयात्रा करके देखिए तो सही कितना आनन्द मिलता है आपको पदयात्रा मे आप पायेंगे कि वास्तव मे विमान यात्रा की अपेक्षा पदयात्रा ज्यादा गौरवपूर्ण है, आनन्द दायक है।

पद-यात्रा यानी जीवन यात्रा। जैसे जीवन मे एक-एक सास ली जाती है, वैसे ही पद-यात्रा मे एक-एक कदम चला जाता है। पद-यात्रा दौड नही गगा का शान्त प्रवाह है। उसमे ब्रह्मपुत्र नदी जैसी भयकरता नही, प्रतिस्पर्धा नही। पद-यात्रा यानी मन्द मुस्कान, खिलखिलाकर हँसना नही। पद यात्रा यानी दीप का प्रकाश, सूर्य की चकाचौंध नही। पद-यात्रा सचमुच एक गतिमान जीवन है—

जीवन मानो निर्मल गंगा
मलयुक्त होगी हो अवरुद्ध,
बहाव है जब तक गंगा मे
तभी तक है वह स्वच्छ-शुद्ध।
छल-छल-छल-छल
कल-कल कल-कल
कितनी मीठी यह अनुगूंज,
बहते चल रे, चलते चल रे
पूनम होगी यदि है दूज॥

जैसे सुदि पक्ष का चन्द्र दूज के दिन बडा छोटा है लेकिन धीरे-धीरे एक-एक रात कर वह वृद्धि को पाता है। और, अन्त मे पूर्णिमा के दिन पूर्णता को उपलब्ध कर लेता है। पद यात्रा बिल्कुल ऐसी ही है—चन्द्रयात्रा की तरह।

किसी देश की मूल आत्मा को यदि पहचानना है तो पदयात्रा ही सबसे बढिया साधन है। ग्रामीण अचलो की मूल आत्मा पदयात्रा के द्वारा ही पहचानी जा सकती हैं। देश की मौलिक सस्कृति, देश के मूल निवासियो की नागरिकता, भारतियो की भारतीयता यदि ये सब चीजें कही पहचानने के लिए हम जायें तो गाँव गाँव मे जायें और उसके लिए सबसे बढिया और सबसे सस्ता साधन पदयात्रा है। देश-दर्शन, स्वाध्याय, सत्सग, ज्ञानार्जन ये सब पदयात्रा के माध्यम से स्वत. हो जाते हैं। गाँव-गाँव मे जाते हैं और अनुभव करते हैं कि इस गाँव की कैसी सस्कृति है। पद-यात्री निकटता से हर चीज को देख सकता है। उसमे यान्त्रिकता नही, हार्दिकता होती है। वह जितनी सहजता और समीपता से लोगो के जीवन, भावो तथा सास्कृतिक मूल्यो का आकलन कर पाता है, वह द्रुतगामी वाहन-यात्रियो के लिए शक्य नही है। इसलिए वह प्रभावना कर बैठता है।

एक व्यक्ति जापान से भारत आता है दिल्ली पहुँच गया दिल्ली घूम लिया। वापस जापान चला गया कहेगे भारत घूम आये। अरे भारत थोडे घूमे हैं आप तो जापान मे ही घूमे हैं। दिल्ली जापान ही तो है और क्या है? गाँव-गाँव मे जाते तो आपको असली भारत का पता लगता, नही तो आपको क्या पता लगेगा। जो दिल्ली मे है वह टोकियो मे भी मिल जायेगी। शहरो की सभ्यता तो जो जापान मे

है वह दिल्ली मे भी मिल जायेगी। लेकिन ग्रामीण सभ्यता को पहचानना है तो हमे गांवो-गांवो मे पर्यटन करना होगा। धर्म-कर्म शहर मे थोड़े ही है, यहाँ तो दिखाना अधिक है। असली धर्म तो गांवो मे है।

आज हम, मैं अपने ऊपर ही कहता हू यदि विमान यात्रा करता हू तो उसमे कितने लोगो को घाटा होगा। मुझे दिल्ली से कलकत्ता आना है। हवाई जहाज मे चढा यहाँ पहुँच गया। मार्ग मे कितने ही गांव आये हैं, जितने भी धर्म अनुयायी हैं सब हमसे अछूते रह गये और हम उनसे अछूते रह गये। हमारी जाति अस्पृश्य जाति हो जायेगी। वे बिचारे गांव गांव मे रहने वाले कब मुनियो का सत्सग कर पायेंगे। पदयात्रा ही ऐसा साधन है जिनके द्वारा उन्हें उनके धर्म का उपदेश मिल जाता है इनके गुरुओं का दर्शन हो जाता है उपदेश मिल जाता है। वे हिन्दू है तो उन्हें ज्ञात हो जाता है कि हिन्दू धर्म क्या है और हम हिन्दू हैं और यदि वे जैनी हैं तो उन्हे यह बोध हो जाता है कि हम जैनी हैं और हमारा जैन धर्म क्या है। आपको सच्ची श्रद्धा गांव मे ही मिलेगी। हमारे आचार और विचार की गगा यमुना को गांव गांव मे प्रवाहित करने वाली है यह पद यात्रा।

इस पद-यात्रा के बहाव ने कितने-कितने लोगो के पापो का प्रक्षालन किया है बडी प्रभावना हुई इस पद-यात्रा के कारण भारतीय सस्कृति की। एक पदयात्री साधक हजारो-हजारो लोगो को निर्मल करता है। यह ठीक वैसे ही जैसे एक दीपक से हजारों दीपक जलाये जाते हैं। मेरी एक कविता है कि—

ज्योति से ज्योति अगिन ज्योतियां,
बढ़ता यों ज्योतित संसार।
नदी से नदी असीम नदियां,
निर्मित उससे पारावार।
ज्योति ज्ञान की, नदी प्रेम की,
स्पर्श करें धारा मे धार।
कहां रहेगा तमस्-राज्य फिर,
अकाल—पीड़ा बारम्बार॥

पद-यात्रा मे ज्ञान की ज्योति और प्रेम की सरिता घर-घर पहुँचाई जाती है। पद-यात्रा के द्वारा एक-एक को सुधारने का प्रयास किया जाता है। 'कहाँ रहेगा तमस्-राज्य फिर'—अन्धियारे का प्रभुत्व तमसावृत्त वातावरण हर घर से हटाने का माध्यम है पद-यात्रा।

यदि हम पद-यात्रा को छोड देंगे तो हमे बहुत-बहुत घाटा होगा। नुकशान ही नुकशान होगा फायदा कुछ नही होगा शहर वालो को तो घण्टाभर क्यों, चौबीस के चौबीस घण्टे समझा दो लेकिन चौबीस घन्टे के बाद तो जैसे ही अपनी दुकान मे

गये वापस वही गृहस्थी वही चोरी-चपेटी सब कुछ वही। ग्रामीण को कह दिया सुन लिया बात ठीक है जच गयी वापस वैसा कभी नही करेंगे। भले ही दो पैसा कम—आमदनी हो लेकिन वैसा काम नही करेंगे।

तो पद यात्रा, मैं विमान यात्रा का विरोधक नही हू लेकिन पद यात्रा के महत्व को तो इन्कार नही किया जा सकता, उसको नकारा नही जा सकता। उसके महत्व पर यदि कोई लाछन लगाता है तो गलत है।

विमान यात्री जब विमान-यात्रा करेगा, तो विमान-यात्रा की महिमा गायेगा यहाँ तक तो बात जचती है, किन्तु उन्ही के द्वारा पद-यात्रा का विरोध करना जचता नही है। किसी को विमान-यात्रा भा गई, वह विमान यात्रा करे। किसी को पद यात्रा भा गई, वह पद-यात्रा करे। विमान-यात्रा मे फायदा केवल शीघ्रगम्यता और समय का है। इसके अलावा कोई फायदा नही है। घाटा अधिक फायदा कम है इसमे। अब मैं देखता हू कि जो जैनसाधु लोग विमान-यात्रा करते हैं, वे भीतर से बडे घबडाए हुए-से लगते हैं। उन्हे समाज का सबसे बडा भय है। इसीलिए कुछेक साधु लोग वाहन-यात्रा तो करते हैं किन्तु कहते यही हैं कि हम पैदल विहार करके आये हैं। कारण उन्हे डर है कि यदि वे यह कह देंगे कि हम वाहन से आए हैं तो शायद समाज सम्मान की दृष्टि से उन्हे न देखें। इस तरह सत्यमहाव्रत का पालन करने वाला समाज भीरु व्यक्ति असत्य का अनुसरण कर लेता है।

मैं जब बनारस मे था, तो ऐसी घटना घटी थी एक प्रतिष्ठित सन्त आये रात के साढे सात बजे, बडे पढे-लिखे थे। स्थानकवासी थे, खैर, उससे मतलब नही। हमने उनका प्राथमिक स्वागत किया। किन्तु वहाँ के डायरेक्टर को शका हो गई कि सूर्यास्त हुए दो-सवा दो घन्टे हो गये और अब जैन मुनि उसमे भी फिर स्थानकवासी का पदार्पण। बात कम जची। जाँच-पडताल की। जो रिक्सा या टैक्सी वाला उन्हे लेकर आया था, उसको क्या मालूम, उसने उस आश्रम के एक कर्मचारी से यह जिक्र किया। उसने डायरेक्टर को बताया और उन्होने हमे। जबकि वे सन्तजी इस तरह से बोलते थे कि मैं इस-इस मार्ग से होता हुआ आया हूँ, पैदल चलकर। आखिर जब रहस्योद्‌घाटन हुआ, तो उन्होने यह स्वीकार कर लिया कि मैंने वाहन का उपयोग किया था।

अब मैं कहता हूँ कि ठीक है, वाहन का उपयोग किया, तो फिर उसे छिपाने की जरूरत ही क्या है। यदि समाज से इतने अधिक डरते हो, तो वाहन पर चढते ही क्यो हो। पैदल चलो और सम्मान पाओ। रही बात, हमारे द्वारा उन्हें नमन की, तो हम तो हर एक को आदरणीय समझते हैं। सारी मानव-जाति एक है। क्षुद्र से क्षुद्र जीव मे भी चेतना की अनन्त ज्योति रहती है तो वे तो आखिर सन्त हैं। और बाहरी क्रियाओ के द्वारा ही किसी सन्त की परीक्षा करना मैं अच्छा नहीं मानता। जो ऊपर

का देखता है, उसे सागर खारा लगता है। भीतर-अन्दर की ओर झाँको, तो मोती-रत्नो की भी सम्भावना होती है। हम उपाध्याय अमरमुनि से मिले। परस्पर प्रभावित हुए। हमने उन्हें नमन किया और उन्होने हमे गले से लगाया। कुछ लोगो को यह बात कम जची। उस समय वहाँ पर श्री गणेश ललवानी, श्रीमती राजकुमारी बेगानी वगैरह थे, उन्हे यह कार्य अच्छा लगा और उन्होने हमे कहा कि आपने तो वास्तव मे अपने गच्छ के अनुकूल और गौरवपूर्ण कार्य किया है। खैर ! यह तो अपना अपना दृष्टिकोण है। पर गुणग्राहकता होनी चाहिये।

गृहस्थ-श्रावक भी तो कई तरह के होते हैं, अच्छे बुरे परन्तु सबको परस्पर जय-जिनेन्द्र या प्रणाम करना चाहिए—यह एक व्यावहारिक सस्कृति है। तब फिर साधु लोग यदि एक दूसरे का अभिवादन नही करेंगे, तो फिर साधुता कहाँ ? आचरण और निश्चय मे वाद में प्रवेश करो, पहले व्यवहार को देखो। कौन कैसा है, उससे हमे कोई प्रयोजन नही है, हमे तो अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व को पूरा कर देना चाहिये।

वाहन यात्रा के सम्बन्ध मे जब और भी दूसरे मुनिगण कभी-कभी मुझे कुछ कहते हैं तो मैं उनसे यही कहता हूँ कि हमारी चाल भले ही कछुआ-छाप हो लेकिन हम आपकी खरगोश-चाल से पीछे नही रहेगे। विजय कछुए की होती है, जो जितेन्द्रिय, है और यतनापूर्वक चलता है।

यदि कोई यह पूछता है कि आज के विज्ञान के युग मे आवागमन के द्रुतगामी साधन उपलब्ध हैं और मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है तो पद यात्रा के मार्ग का प्रतिपादन करना क्या युक्ति सगत है।

मैं कहता हूँ यह तो इतना युक्ति सगत है कि इसकी युक्ति को तो कोई काट ही नही सकता। रवीन्द्रनाथ टैगोर सम्पन्न व्यक्ति थे, लेकिन फिर भी वे जब भी यात्रा करने के लिए निकलते तो ऐसी ट्रेन मे ऐसी रेल मे बैठते जो पहुचाने मे अधिक से अधिक समय ले। जब उनसे पूछा गया कि आपका टिकट कटा है एक्सप्रेस गाडी की प्रथम श्रेणी का। आप उसमे क्यो नही जाते ? तो रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा कि मुझे एक्सप्रेस नही चाहिए, मुझे प्रथम श्रेणी नही चाहिए। मैं तो जनता रेल मे जाऊँगा जनता ट्रेन मे ही जाऊँगा। वह धीरे-धीरे जाती है। इससे प्रकृति के सौन्दर्य का पान होता है। सच तो यह है कि पदयात्री को जैसा प्रकृति के सौन्दर्य का भान होता है, वैसा वाहन यात्री को कहाँ हो सकता है। रेल मे अथवा हवाई जहाज मे बैठे और गतव्य स्थल पहुँच गये। प्रकृति का आनन्द हम नही ले पाये। प्रकृति का आनन्द लेने के लिए हमे पैरो-पैरो ही चलना पडेगा। थोडी साधना करनी पडेगी। प्रकृति का आनन्द मुफ्त मे नही मिलता। शारीरिक कीमत चुकानी पडती है। जाता है व्यक्ति स्वय प्रकृति का आनन्द पाने के लिए। हम लोगो मे तो बहुत बार बातचीत होती है कि देखो कितना बढिया है यह सीन। चारो तरफ कितनी अच्छी सीनरी दिखाई

पड रही है। बहुत बार तो हमे ऐसा लगता है कि आज हम यदि पदयात्रा न करें तो इस सीनरी से वचित रह जायेंगे। कहाँ भीड से सकुल यात्रा और कहाँ नीरव तथा पदयात्रायें। वाहन यात्रा तो पराधीनता है और पदयात्रा स्वाधीनता है। जब इच्छा चल पडे। वाहन यात्रा मे ऐसा नही होता। जब ट्रेन अथवा हवाई जहाज का समय है उसी समय हमे जाना पडेगा। पदयात्रा अरे ! जब इच्छा हुई निकल पडे। कहते हैं न, वहता पानी रमता जोगी। जब उसकी इच्छा हुई रमण करने के लिए चला गया निकल पडा। इसमे किसी की अधीनता स्वीकार नही करनी पडती और दूसरे मे वाहन यात्रा वडी खर्चीली यात्रा है। बडा खर्चा लगता है उसमे और साधु, सन्त, साधु को तो वाहन यात्रा करनी ही नही चाहिए। क्यो ? क्योकि जो व्यक्ति वाहनयात्रा करेगा उसे पैसा रखना ही पडेगा। पैसा कमाने के लिए, पैसा जुगाड करने के लिए कोई न कोई अटकलवाजी लगानी ही पडेगी। विना अर्थ के वाहन-यात्रा नही हो पायेगी।

अत्थो मूल अणत्थाण यह आगम वाक्य है। अर्थ अनर्थ का मूल है अत एक अपरिग्रही और अहिंसक साधक के लिए अर्थ जुटाना न केवल उसके चरित्र सम्वन्धी पतन का माध्यम होगा अपितु उसे पू जीपति और सेठ साहुकारो का आश्रय भी स्वीकार करना पडेगा। वह पराधीन हो जायेगा। उसका स्वावलम्बीपन और निरपेक्षता पूर्ण जीवन वाहन यात्रा मे विलकुल खतम हो जाता है अहिंसा का महान आदर्श धूमिल हो जायेगा। ऐसी स्थिति में वह साधक या साधु नही रहेगा अपितु सासारिक वृत्तियों में रचा-पचा गृहस्थ ही होगा। यह तथ्य हम दशवैकालिक सूत्र में देख सकते हैं। आज हमें कोई अपेक्षा नही है। ठीक है, मार्ग में सुविधा न होने के कारण पदयात्रियों को अपनी व्यवस्थायें करवानी पडती है। इतना होते हुए भी वह स्वावलम्वी है, निरपेक्ष है। आपने नही दिया कोई बात नही, हमारे तो 'माई-माई बहुत व्याही', आगे फिर देखेंगे। चलते चलो—

मञ्जिल वञ्जिल पूछे कौन, चलो जहां तक रस्ता जाए।
घाट का पानी घाट लगे और बहता पानी बहता जाए॥

वढते चलो आगे चलते ही चलो। जो साधक अध्यात्म जगत में रमण करता है। उसके लिए तो मैं जहाँ तक सोचता हूँ पदयात्रा ही उचित और युक्त है। अन्यथा समाज को भी घाटा, हमको स्वय को भी घाटा पर कल्याण के लिए यदि हम वाहन को अपनाते हैं, तो हमारे लिये पर कल्याण के लिए भी बाधक है, स्वकल्याण मे भी वाधक है।

मैं आपसे कहूगा कि अरे भाई ! मुझे यहाँ से दिल्ली जाना है हवाई जहाज मे। पन्द्रह सौ रुपया टिकट दर है, व्यवस्था कर देना। वे किसी भी हालत मे नही करेंगे। कोई भी नही करेगा और हम कह देगे हम यहाँ से दिल्ली जा रहे हैं। दस हजार का खर्चा है पदयात्रा से जायेंगे। दस क्या पन्द्रह लगेंगे तो पन्द्रह की भी

का देखता है, उसे सागर खारा लगता है। भीतर-अन्दर की ओर झाँको, तो मोती-रत्नो की भी सम्भावना होती है। हम उपाध्याय अमरमुनि से मिले। परस्पर प्रभावित हुए। हमने उन्हें नमन किया और उन्होने हमे गले से लगाया। कुछ लोगो को यह बात कम जची। उस समय वहाँ पर श्री गणेश ललवानी, श्रीमती राजकुमारी बेगानी वगैरह थे, उन्हे यह कार्य अच्छा लगा और उन्होने हमे कहा कि आपने तो वास्तव मे अपने गच्छ के अनुकूल और गौरवपूर्ण कार्य किया है। खैर! यह तो अपना अपना दृष्टिकोण है। पर गुणग्राहकता होनी चाहिये।

गृहस्थ-श्रावक भी तो कई तरह के होते हैं, अच्छे बुरे परन्तु सबको परस्पर जय-जिनेन्द्र या प्रणाम करना चाहिए—यह एक व्यावहारिक सस्कृति है। तब फिर साधु लोग यदि एक दूसरे का अभिवादन नही करेंगे, तो फिर साधुता कहाँ? आचरण और निश्चय मे वाद मे प्रवेश करो, पहले व्यवहार को देखो। कौन कैसा है, उससे हमे कोई प्रयोजन नही है, हमे तो अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व को पूरा कर देना चाहिये।

वाहन यात्रा के सम्बन्ध मे जब और भी दूसरे मुनिगण कभी-कभी मुझे कुछ कहते हैं तो मैं उनसे यही कहता हूँ कि हमारी चाल भले ही कछुआ-छाप हो लेकिन हम आपकी खरगोश-चाल से पीछे नही रहेगे। विजय कछुए की होती है, जो जितेन्द्रिय, है और यतनापूर्वक चलता है।

यदि कोई यह पूछता है कि आज के विज्ञान के युग मे आवागमन के द्रुतगामी साधन उपलब्ध हैं और मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है तो पद यात्रा के मार्ग का प्रतिपादन करना क्या युक्ति सगत है।

मैं कहता हूँ यह तो इतना युक्ति सगत है कि इसकी युक्ति को तो कोई काट ही नही सकता। रवीन्द्रनाथ टैगोर सम्पन्न व्यक्ति थे, लेकिन फिर भी वे जब भी यात्रा करने के लिए निकलते तो ऐसी ट्रेन मे ऐसी रेल मे बैठते जो पहुचाने मे अधिक से अधिक समय ले। जब उनसे पूछा गया कि आपका टिकट कटा है एक्सप्रेस गाडी की प्रथम श्रेणी का। आप उसमे क्यो नही जाते? तो रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा कि मुझे एक्सप्रेस नही चाहिए, मुझे प्रथम श्रेणी नही चाहिए। मैं तो जनता रेल मे जाऊँगा जनता ट्रेन मे ही जाऊँगा। वह धीरे-धीरे जाती है। इससे प्रकृति के सौन्दर्य का पान होता है। सच तो यह है कि पदयात्री को जैसा प्रकृति के सौन्दर्य का भान होता है, वैसा वाहन यात्री को कहाँ हो सकता है। रेल मे अथवा हवाई जहाज मे बैठे और गतव्य स्थल पहुँच गये। प्रकृति का आनन्द हम नही ले पाये। प्रकृति का आनन्द लेने के लिए हमे पैरो-पैरो ही चलना पड़ेगा। थोडी साधना करनी पडेगी। प्रकृति का आनन्द मुफ्त मे नही मिलता। शारीरिक कीमत चुकानी पडती है। जाता है व्यक्ति स्वय प्रकृति का आनन्द पाने के लिए। हम लोगो मे तो बहुत बार बातचीत होती है कि देखो कितना बढिया है यह सीन। चारो तरफ कितनी अच्छी सीनरी दिखाई

पड रही है। बहुत बार तो हमे ऐसा लगता है कि आज हम यदि पदयात्रा न करें तो इस सीनरी से वचित रह जायेंगे। कहाँ भीड से सकुल यात्रा और कहाँ नीरव तथा पदयात्रायें। वाहन यात्रा तो पराधीनता है और पदयात्रा स्वाधीनता है। जब इच्छा चल पडे। वाहन यात्रा मे ऐसा नही होता। जब ट्रेन अथवा हवाई जहाज का समय है उसी समय हमे जाना पडेगा। पदयात्रा अरे! जब इच्छा हुई निकल पडे। कहते हैं न, बहता पानी रमता जोगी। जब उसकी इच्छा हुई रमण करने के लिए चला गया निकल पडा। इसमे किसी की अधीनता स्वीकार नही करनी पडती और दूसरे मे वाहन यात्रा बडी खर्चीली यात्रा है। बडा खर्चा लगता है उसमे और साधु, सन्त, साधु को तो वाहन यात्रा करनी ही नही चाहिए। क्यो ? क्योकि जो व्यक्ति वाहनयात्रा करेगा उसे पैसा रखना ही पडेगा। पैसा कमाने के लिए, पैसा जुगाड करने के लिए कोई न कोई अटकलबाजी लगानी ही पडेगी। बिना अर्थ के वाहन-यात्रा नही हो पायेगी।

अत्थो मूल अणत्थाण यह आगम वाक्य है। अर्थ अनर्थ का मूल है अत एक अपरिग्रही और अहिसक साधक के लिए अर्थ जुटाना न केवल उसके चरित्र सम्बन्धी पतन का माध्यम होगा अपितु उसे पूजीपति और सेठ साहुकारो का आश्रय भी स्वीकार करना पडेगा। वह पराधीन हो जायेगा। उसका स्वावलम्बीपन और निरपेक्षता पूर्ण जीवन वाहन यात्रा मे बिलकुल खतम हो जाता है अहिसा का महान आदर्श धूमिल हो जायेगा। ऐसी स्थिति में वह साधक या साधु नही रहेगा अपितु सासारिक वृत्तियो में रचा-पचा गृहस्थ ही होगा। यह तथ्य हम दशवैकालिक सूत्र में देख सकते हैं। आज हमें कोई अपेक्षा नही है। ठीक है, मार्ग में सुविधा न होने के कारण पदयात्रियो को अपनी व्यवस्थायें करवानी पडती है। इतना होते हुए भी वह स्वावलम्वी है, निरपेक्ष है। आपने नही दिया कोई बात नही, हमारे तो 'माई-माई बहुत ब्याही', आगे फिर देखेंगे। चलते चलो—

मञ्जिल वञ्जिल पूछे कौन, चलो जहां तक रस्ता जाए।
घाट का पानी घाट लगे और बहता पानी बहता जाए॥

बढते चलो आगे चलते ही चलो। जो साधक अध्यात्म जगत में रमण करता है। उसके लिए तो मैं जहाँ तक सोचता हूँ पदयात्रा ही उचित और युक्त है। अन्यथा समाज को भी घाटा, हमको स्वय को भी घाटा पर कल्याण के लिए यदि हम वाहन को अपनाते हैं, तो हमारे लिये पर कल्याण के लिए भी बाधक है, स्वकल्याण मे भी बाधक है।

मैं आपसे कहूगा कि अरे भाई! मुझे यहाँ से दिल्ली जाना है हवाई जहाज मे। पन्द्रह सौ रुपया टिकट दर है, व्यवस्था कर देना। वे किसी भी हालत मे नही करेंगे। कोई भी नही करेगा और हम कह देंगे हम यहाँ से दिल्ली जा रहे हैं। दस हजार का खर्चा है पदयात्रा से जायेंगे। दस क्या पन्द्रह लगेंगे तो पन्द्रह की भी

व्यवस्था हो जायेगी। उस पन्द्रह को खर्च करने मे उसे असुविधा नही होगी, लेकिन डेढ हजार खर्चा करने मे उसे पचास तरह से विचार-करना पडेगा। यही तो साधना है। साधना मार्ग अपनाने के वाद भी यदि यह सोचा जाय कि समय ज्यादा लग जायगा तो साधना कैसी।

मैं आपको एक बात बताऊँ। जब मैंने खादी पहनना शुरू किया तो उस समय जब खादी खरीद की गयी लगा कि बाप रे बडी महगी है खादी तो। यानी यह बीमारी तो औषधि से भी ज्यादा महगी पडी। आखिर एक वरिष्ठ श्रावक हमारे पास आये और वडे महाराज जी से बात बात मे कह दिया कि भाई नाम तो खादी है लेकिन खर्चा इतना लग जाता है कि हमारे तीन के कपडे बन जाये तो भी इनका एक का नही बनता। उन्होने कहा कि आपके दस साधुओ के कपडे का खर्चा यदि एक साधु पर लगता है तो हम खादी पहले बनवायेंगे मील के कपडे की अपेक्षा। इसी को तो विवेक कहते है।

तो मैंने यह अनुभव किया कि आज वाहन यात्री जितने भी हैं, देख लीजिए उसकी कितनी कदर है। और जो साधु वाहन-यात्रा करते हैं उनमे भी जैन साधु। वह जैन सघ द्वारा ज्यादा श्रद्धा-केन्द्र नही बन पाता। लोग उनकी तुलना चैत्यवासी या शिथिलाचारी साधुओ से करते हैं। जबकि बहुत जगह हमने देखा पदयात्री साधु भले ही कुछ पढा लिखा हुआ न हो भले ही उसके पास कुछ न हो, लेकिन फिर भी उसको कुछ सूझ-बूझ है। वह पूज्य की दृष्टि से देखा जाता है।

आज जब राजनेता चन्द्रशेखर ने अपनी पार्टी का प्रचार करने के लिए पद यात्रा का माध्यम लिया तो देश के सारे अखबार भर गये केवल पदयात्रा के द्वारा पदयात्रा के कारण। सभी लोग पदयात्रा की महिमा गाने लगे क्योकि उन्होने पदयात्रा का अनुभव उसी समय किया जब स्वय चले। सभी अखबारो मे पदयात्रा ही पदयात्रा और यह निश्चित है कि वह व्यक्ति भले ही न जीता हो, लेकिन उसको बहुत बडी सफलता मिली पदयात्रा के द्वारा। हम तो आजकल यह भी सुनते हैं कि दूसरी पार्टी काग्रेस आई वह भी अपनी पार्टी का प्रचार करने के लिए अपने नेताओ को प्रेरणा दे रही है कि पदयात्रा करो। अब उनको होश आया है कि हम पदयात्रा करें। वाहन यात्रा से तग आ गये हैं लोग। वे चाहते हैं कि अब पदयात्रा करें। इसके द्वारा भी हम प्रचार करें प्रसार करें। हम जब इधर बगाल मे आये न। तो कहते हैं कि हम बनारस से आये हैं। आपनी बनारस थेके एसेछेन दादा! बनारस थेके पाये-पाये, हेंटे-हेंटे। उनको बडा आश्चर्य होता। पदयात्रा इतनी लम्बी! जबकि हम तो सारी जिन्दगी ही ऐसे चलते रहते हैं। उनके लिए बडा आश्चर्य और हमारे लिए कोई आश्चर्य की बात नही। जैसे वाहन यात्रा एक साधन बन गई वैसे पदयात्रा एक साधन बन गया।

तो प्रश्नकर्त्ता ने जो प्रश्न किया है कि क्या पदयात्रा का प्रतिपादन करना युक्ति सगत है ?

पदयात्रा का प्रतिपादन करना निश्चित रूप से युक्ति सगत है। मैं इसलिए नही कहता कि मैं स्वय पदयात्री हूँ। मैं तो सत्य बता रहा हूँ। जो सत्य है वह कह रहा हू। मैं क्या हूँ यह नही बताना चाहता हू। सत्य क्या है यह बताना चाहता हू। यह बात अलग है कि मैं स्वय उस सत्य का पालन करता हूँ। ज्ञात सत्य का पालन और पालित तथा आचरित सत्य का ज्ञान दोनो एक तराजू के दो पलड़े हैं।●

आदर्शवाद-यथार्थवाद

प्रवचन-समय

११ जुलाई १९८५

प्रवचन-स्थल

जैन भवन, कलकत्ता

प्रश्न है   सत्य आदर्शवाद मे है या यथार्थवाद मे ? यदि यथार्थवाद मे है तो आदर्शवाद की इतनी महिमा क्यो और यदि आदर्शवाद मे सत्य है तो यथार्थवाद का क्या अर्थ ?

मानव जीवन के दो पहलू हैं । एक तो वह जो हमे दिखाई देता है और दूसरा वह जिसे हम चाहते हैं । जो दिखाई देता है, वह यथार्थवाद है । जिसे हम चाहते हैं वह आदर्शवाद है । दिखाई तो हमे देता है जीवन दुखो से भरा हुआ, लेकिन चाहते हैं हम, जीवन को परम सुखी बनाना । चाहना अलग चीज है और जो सत्य दिखाई देता है, वह अलग चीज है । जो दिखाई देता है उसमे तो हम देखते हैं कि चारो तरफ अन्याय, अत्याचार, अराजकता और अनैतिकता है । लज्जा और मर्यादा के मकडी—जाल के भीतर हमे व्यभिचार ही व्यभिचार दिखाई देता है । जो दिखाई देता है उसे देखकर आदमी दु खी हो जाता है । जो दिखाई देता है वह हमेशा यथार्थवाद ही होता है । किन्तु जो हमे दिखाई देता है उसके परे भी कोई चीज है । जो जीवन मे दृष्टि-गोचर होता है उसके परे भी कोई स्वरूप है । इस जीवन से परे भी कोई जीवन है । इस ससार से परे भी कोई ससार है । इस पति से भी परे कोई पति है । इस सुख से परे भी कोई सुख है । यही तो है आदर्शवाद ।

यथार्थवाद मे तो जहाँ फूल हैं, वहाँ काँटे भी हैं । जबकि आदर्शवाद मे केवल फूल ही फूल हैं, वहाँ कांटो का नामोनिशान भी नही है । इसलिए आदमी देखता तो है कांटो को और फूलो को—दोनो को ही, लेकिन जिसे चाहता है वह केवल फूल ही फूल हैं । आदमी कांटे को कभी नही चाहता है । बस, कांटे को न चाहना केवल फूल ही फूल को चाहना ही आदर्शवाद है । यही अन्तर है आदर्शवाद और यथार्थवाद मे ।

वस्तुत मनुष्य का जीवन कटकाकीर्ण है । यह जीवन दु खो और कष्टो से भरा हुआ है । जन्म और मरण मनुष्य-जीवन की सबसे बडी और सबसे चरम वेदना है । जन्म और मृत्यु से बढकर और कोई दूसरा कष्ट नही है हमारे जीवन मे । हमारा जीवन तो प्रायश्चित है जन्म-मरण की वेदना के रूप मे । जीवन, जन्म और मरण ये जो दो वेदनायें हम भोगते हैं उसके बीच का एक पछतावा है । और यह पछतावा करते-करते आदमी अपनी सारी जिन्दगी मे चैन की एक सांस भी नही ले पाता । जब भी देखें उसके जीवन मे आकुलता है, व्याकुलता है, कष्ट आये हुए हैं, जीवन दुखो से भरा हुआ है । लेकिन इतना होते हुए भी मरना कोई नही चाहता । जन्म और मरण अपने आप मे बहुत बडी वेदनायें है लेकिन आदमी यही कहता है कि जीवन तो वरदान है । वास्तव मे जीवन मिला है पश्चाताप करने के लिए । लेकिन वह जीवन हमारे लिए वरदान सिद्ध हो जाता है और इसीलिए आदमी दीर्घायु होने की कामना करता

है। पैरो से पगु हो गया है, हाथ की अगुलिया सड रही हैं, मुँह से लार टपक रही है, विस्तरो पर सोये पडे रहते हैं, घर वालो के लिए केवल वोझ वने हैं लेकिन फिर भी आदमी दीर्घायु ही चाहता है।

नारी भयकर से भयकर वेदना प्रसव-वेदना सहती है कितनी भयकर वेदना होती है प्रसव की, इसका अनुभव तो स्वय नारी ही कर सकती है। हम लोग तो केवल सुनते हैं। परन्तु जव सुनते और पढते हैं कि प्रसव के समय कितनी वेदना होती है। ओह! उसे पढते समय हम लोगो के भीतर एक चीख उठ जाती है, लेकिन इतना होते हुए भी हर स्त्री अपने जीवन मे कम से कम एक वार तो गर्भवती होना ही चाहती है। किसी न किसी प्रयास से एक पुत्र को पैदा करना ही चाहती है। वह लालायित रहती है, वेटे को पाने के लिए भले ही सहनी पडे उसे वडी-वडी वेदनाएँ। क्योकि उसमे आशा का सचार है। आदमी रोग की शय्या पर पडा है, लेकिन फिर भी किसी आशा की सम्भावनायें लिये हुए हैं। गर्भवती है। प्रसव-वेदना सहती है स्त्री, आशा को लिये हुए ही सहती है। वस यह आशा का सचार ही आदर्शवाद है जीवन का।

भले ही कोई भी पहलू ले लें। भले ही काव्य साहित्य को ले लें। भारतीय जीवन मे तो कम से कम, आदर्शवाद की ही झलक दिखाई देगी और इसीलिए भारतीय सस्कृति आदर्शवाद को ही यथार्थवाद कहती है। काव्य के जितने लक्षण वताये गये हैं वे सव के सव वस्तुत आदर्शवादात्मक दृष्टिकोण को ही लिए हुए हैं। इसीलिए भारतीय काव्य, भारतीय महाप्रवन्ध, भारतीय नाटक, उनका अन्त कभी भी दुखान्त नही होता कोई भी नाटक, महाकाव्य या महाप्रवन्ध ऐसा नही मिलता, जिसका अन्त दुखान्त हुआ हो। हर नाटक का, हर उपन्यास का अन्त भारत मे सुखान्त ही करते हैं। उसका मूल दृष्टिकोण आदर्शवाद ही हैं।

आजकल भारत मे जो फिल्मे चलती हैं उनमे भी हम देखते हैं कि उनका समापन भी अधिकाशतया सुखान्त ही होता है, दुखान्त नही होता। शुरूआत मे दिखा देते हैं माँ के दो वेटे अलग-अलग हो गये, वीच की पूरी फिल्म मे दोनो भाईयो के वीच मे या तो युद्ध दिखायेंगे, लडाई दिखायेंगे, सघर्ष दिखायेंगे और जव फिल्म समाप्त होगी तो दोनो भाई एक दूसरे से गले मिलते हुए दिखाई देते हैं। इसीलिए भारतीय फिल्मो मे किसी भी तरह की प्रेरणा नही है क्योकि जव आदमी फिल्म-हाल से फिल्म देखकर निकलता है तो उसके मन मे एक खुशियाली होती है कि दोनो भाई मिल गये। उसका मूल कारण यही होता है कि भारत हमेशा आदर्शवाद के दृष्टिकोण को ही केन्द्र विन्दु रखता है। जवकि पाश्चात्य जगत मे, विदेशो मे जो भी फिल्मे वनती हैं, जो भी नाटक होते हैं उनका समापन हमेशा दुखान्त ही होता है। आदमी जव फिल्म हाल से निकलता है तो पाश्चात्य लोग कहते हैं कि वह किसी न किसी प्रेरणा को लेकर वाहर आना चाहिए। पाश्चात्य फिल्म इस तरह की होती है कि जैसे एक आदमी दूसरे

आदमी के पेट मे छूरा घोपता है तो छूरा घोपने के कारण उसका कितना दुष्परिणाम उसे भोगना पडता है। वस वह दुष्परिणाम भोगते-भोगते ही फिल्म का समापन कर देते हैं। आदमी जव फिल्म देखकर वाहर निकलता है तो उसके भीतर एक विचित्र प्रकार की वेचैनी आ जाती है कि अरे यदि मैं भी किसी के पेट मे छूरा घोपूगा तो मेरी भी यही दशा होगी। अत पाश्चात्य फिल्मो के द्वारा यथार्थवाद की झलक हमेशा दिखाई देगी और भारत हमेशा आदर्शवाद को मुख्यता देता है।

आदर्शवाद वास्तव मे भारत की उपज है और यथार्थवाद पाश्चात्य की उपज है। भारत मे आज से नही अपितु हजारो-हजारो वर्षो से हमेशा आदर्शवाद की ही परम्परा रही है और पाश्चात्य जगत मे शुरू से ही हम चाहे जिसके नाटक, चाहें सेक्स-पीयर के नाटक, चाहे जिस साहित्य को उठाकर पढ लें, लेकिन यथार्थवाद का दृष्टि-कोण ही वहाँ मुख्य होगा। भारत मे तो वडी महिमा गाते हैं आदर्शवाद की। शील का जैसा परिपाक भारतीय साहित्य मे मिलता है वैसा परिपाक और कही नही मिलेगा लेकिन इसका मतलव यह नही कि पाश्चात्य-जगत् जो कि आदर्शवाद की उपेक्षा करता है वह सही नही है। जो वह भारत के आदर्शवाद को केवल एक कल्पना का कवूतर कहता है और यह कर भारतीय आदर्शवाद की खिल्ली उडाता है वह ज्यादा सही नही है। आदर्शवाद मे कुछ कल्पना आ सकती है लेकिन आदर्शवाद असत्य से भरा हुआ नही रहता, यथार्थवाद का विरोधी नही होता। शकुन्तला का प्रणय, राधा और मीरा की प्रेम-भावना, सीता का त्याग, राम की मर्यादा, भीष्म का व्रह्मचर्य युद्धस्थल मे कृष्ण का उपदेश—ये सव जीवन की ठोस अनुभूतियो को व्यक्त करते हैं। इनको हम केवल कल्पना ही नही कह सकते। ऐसा कहने मे पाश्चात्य-जगत् चाहे जो कहे क्योकि पाश्चात्य-जगत् मे तो मूलत उमर खय्याम की 'खाओ पीओ और मौज उडाओ' की भूमिका है। इस खाओ, पीओ, मौज उडाओ से ही राजनीति मे मार्क्स-दर्शन पैदा हुआ और मनोविज्ञान मे फ्रॉयडवाद का जन्म हुआ था। फ्रॉयड के सिद्धान्त और मार्क्स दर्शन के सिद्धान्त काम और क्षुधा की शान्ति करने के लिए ही पनपे हैं। इसलिए मार्क्स के जितने भी सिद्धात हैं और फ्रायड के जितने भी सिद्धान्त हैं सारे के सारे सिद्धान्तो मे काम और क्षुधा की कैसे तृप्ति हो, यही वात मुख्यत मिलेगी। ठीक है, काम और क्षुधा से जीवन की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्तियां है। लेकिन इसका मतलव यह तो नहीं कि काम और क्षुधा से परे कोई आदर्श और यथार्थ होता ही नही है।

आजकल भारत मे जो आदर्शवाद के लिए डींगे हांकी जाती हैं, वह आदर्शवाद तो विल्कुल असत्य से भरा हुआ है। आज का जो आदर्शवाद है, वह तो ऐसा वन गया है कि कहेंगे कुछ और करेंगे कुछ उसमे विकृति आ गई है।

मैंने पढा है कि वडोदा मे जहाँ सयाजीराव गायकवाड की अध्यक्षता में अहिंसा पर एक सगोष्ठी आयोजित की गई थी तो संगोष्ठी में एक युवक खडा हुआ

और अहिसा पर भाषण देने लगा। भाषण बडा जोशीला था। लोग बडे ही प्रभावित हुए कि क्या कला है आदमी के पास बोलने की। अहिसा पर एक आदमी ने कितने नये-नये प्रकार की रहस्यो का उद्घाटन किया है। लोग बडे प्रभावित हुए वह युवक करीब आधे घण्टे बोला होगा कि अचानक उसने देखा कि मेरी ललाट पर पसीना आ गया है। उसने पसीने को पोछने के लिए जेब से रूमाल निकाला। जब रूमाल निकालकर पोछने लगा तो उसे यह ध्यान नही रहा कि रूमाल में तो वह चीज थी जिसका मैं भाषण में विरोध कर रहा हूँ। वह चीज नीचे गिरी और फूट गयी। लोगो ने उसके ऊपर पत्थर मारे और कहा कि जो आदमी अण्डे का विरोध करता है, उसी आदमी के जेब से यदि अण्डा निकल जाये तो वह अहिसा का आदर्श और अहिसा का यथार्थ कहाँ रहा ?

आज का आदर्शवाद और यथार्थवाद तो बडा ही छिछला हो गया है पहले जमाने का जो आदर्शवाद हम पढते हैं वह वास्तव मे यथार्थवाद से भरा हुआ था। आजकल लोग जिस साम्यभावना का विकास करवा रहे हैं आज से सैकडो वर्ष पूर्व तो बिल्कुल ऐसी ही साम्यभावना थी। सैकडो वर्ष पूर्व एक भिक्षुक, एक साधु की बहुत कद्र होती थी जितनी कि आज एक प्रधान मन्त्री की भी नही होती है। भिक्षुक, जिसके पास रहने के लिए झोपडी नही, पहनने के लिए कपडा नही, खाने के लिए भोजन की व्यवस्था नही, लेकिन फिर भी उसके चरणो मे स्वय राजा आकर झुकता था यही तो भारत की आदर्शवादिता है।

पाश्चात्य-जगत् मे भी यह आदर्शवादिता हमे दिखाई दे जाती है। जब रोम के नेता जिसका नाम कूरियस था सेमाइट जाति के लोग उसके पास पहुँचे और कहा कूरियस ! यदि तुम हमारे पक्ष मे आ जाओ तो हम तुम्हे उतना सोना देगें, जितना तुम्हारे शरीर का भार है। कूरियस उस समय खाना पका रहा था। कूरियस ने कहा कि तुम लोग कितने महामूर्ख आदमी हो कि जो कूरियस गाजर पका-पका कर अपना जीवन चला सकता है वह तुम्हारे सोने से कभी भी आकर्षित नही होगा। उसके लिए सोना और अर्थ की कीमत ही नही है। उसके लिए तो आदर्श ही बहुमूल्यवान है।

आज का जो आदर्शवाद और यथार्थवाद है वह प्राचीनकाल के आदर्शवाद और यथार्थवाद से बहुत ही विचित्र है। आज का जो यथार्थवाद है, ठीक है वह बहुत सीमा तक उचित है। और इस यथार्थवाद की आज अपेक्षा भी थी। क्योकि लोग केवल आदर्शवाद को ही पकडे हुए थे। यथार्थ क्या है लोग इससे अलग हो गये थे। लेकिन पाश्चात्य-जगत् की इस भावना को भी हम स्वीकार नही कर सकते कि भीष्म का ब्रह्मचर्य, राम की मर्यादा, महावीर और बुद्ध का त्याग—ये सब केवल कल्पनायें हैं ये भी सत्य हैं। ये भी यथार्थ से पूरित आदर्श हैं।

आज के जो यथार्थवादी हैं उनका दृष्टिकोण मुख्यत उद्धार के ही लिए तो है फिर वह चाहे नारी हो चाहे शोषित मजदूर हो अथवा चाहे वृद्ध किसान हो लेकिन उनका उद्धार वडा विचित्र है। जहाँ पर आज का यथार्थवाद यह कहता है कि नारी को उसका अधिकार मिलना चाहिए। वहाँ तक तो ठीक है। लेकिन जहाँ पर यथार्थवाद यह कहता है कि नारी केवल एक मनुष्य के अधीन नही रह सकती वह स्वतत्र है। जिस तरह से पुरुप स्वतन्त्र है एक से अधिक नारी रखने के लिए, वैसे ही नारी भी स्वतन्त्र है एक से ज्यादा पुरुष रखने के लिए। यहाँ पर भारतीय आदर्शवाद पाश्चात्य आदर्शवाद से विलकुल अलग हो जायेगा। आज का यथार्थवादी दृष्टिकोण कहता है—

"मुक्त करो नारी को मानव ! चिरवंदिनी नारी को।
युग-युग की बर्वर कारा से ! जननी सखी प्यारी को॥

मुक्त करने की वात तो ठीक है। जहाँ पर नारी के लिए यह कहाँ जाता है—

अवला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल मे है दूध और आंखो में पानी॥

ये वात विलकुल ठीक है। एक ओर तो आँखो से आँसू वहते हैं क्योकि पुरुप केवल उसको अपनी जूती समझता है और नृशष्यता व अत्याचार करता है। वहाँ पर तो यथार्थवाद की यह पुकार निश्चित रूप से नये आदर्शवाद को जन्म देगी। यथार्थवाद की जो यह पुकार है जैसे हम शोपित मजदूरो और शोपित किसानो के लिए भी लें तो यह कहना यथार्थवाद का सही है कि एक ओर तो गरीव आदमी को खाने के लिए रोटी नही मिलती, वही पर धनियो के कुत्ते महलो मे रहते हैं और उनके खाने के लिये दूध-मलाई, और जलेवियाँ दी जाती हैं। गरीव को रहने के लिए झोपडी नही है, वही पर अमीरो के कुत्तो के रहने के लिए अच्छे-अच्छे मकान होते हैं। गरीव को हवा खाने के लिए हाथ पखी नही है वही पर अमीर के कुत्तो के लिए एयरकण्डिशन लगे हुए हैं। गरीव को स्नान करने के लिए एक वाल्टी पानी नही मिलता अमीर के कुत्ते शैम्पू और लक्स सावुन से नित्य स्नान करवाये जाते हैं। जहाँ पर गरीव जिन्दा है लेकिन जिन्दा होते हुए भी उसका पालन-पोपण नही होता वही पर अमीर आदमी मर जाता है तो मरने के वाद उसका शृ गार किया जाता है। उसको वह रूप दिया जाता है जो कि वह जिन्दो को नही देता। यदि आदमी जीवित आदमी पर इतना खर्चा कर दे तो शायद उसके मरने की नौवत नही आती लेकिन मरने के वाद हम सजाते हैं। उसका शृ गार करते हैं। शव को भी हम रूप और रग देते हैं। कव्रो और स्मारको के सम्मान जन-जीवन की उपेक्षा न तो आदर्शवाद है और न ही यथार्थवाद है। पन्त ने कहा है—

शव को दें हम रूप रङ्ग, आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित, चित्र बना दें शव का ?

गत युग के बहु धर्म—रूढि के ताज मनोहर,
मानव के मोहान्ध हृदय मे किये हुए घर।
भूल गये हम जीवन का सन्देश अनश्वर—
मृतकों के हैं मृतक जीवितो का है ईश्वर !

यथार्थवाद और आदर्शवाद की यही पर टक्कर होती है। यथार्थवाद और आदर्शवाद दोनो का हमे सामजस्य करना होगा। गरीब लोग ये नही कहते हैं कि हमे मोती दो। वे तो कहते हैं कि हमे रोटी दे दो। मोती तो हम तुम्हें देते हैं। कम से कम हमे रोटी तो दे दो। लेकिन वे लोग गरीब को रोटी भी नही दे पाते। लेकिन आज के राजनीतिक लोगो की नजरो मे तो है लगोटी और वडी वडी वातें करते हैं। गाँधी की लगोटी का आदर्श दिखाते हैं। गांधी ने जो एक एक घर मे जाकर और आदर्शवाद की स्थापना की थी, वह आदर्शवाद उनमे नही है। राजनीति मे यदि आदर्श हो तो वह राजनीति अमृत है। यथार्थ और आदर्शवाद एव यथार्थवाद से रहित होकर भापण तो दिये जा सकते हैं, नारे तो लगाये जा सकते हैं, किन्तु वह केवल, चीखना—चिल्लाना होगा।

यथार्थवाद अकेला ही शिव और सुन्दरकर नही होता है। यथार्थवाद तभी कल्याणकारी और लोकमङ्गलकारी होता है जब वह आदर्शवाद से समन्वित होता है और इसी तरह आदर्श भी केवल सच्चा आदर्शवाद नही होता यदि वह आदर्शवाद से समन्वित नही है तो जैसे कैंवरा डान्स, डिस्को डान्स मे, स्ट्रीपिरीज डान्स मे नग्नता का सौन्दर्य है। आजकल नग्नता को भी एक सौंदर्य माना जाता है। ठीक है, वह यथार्थ का ही प्रगटन है, क्योकि भीतर से सभी आदमी नगे हैं, लेकिन यह उनका नग्न सौंदर्य आदर्श पूर्ण नहीं है। कोई भी आदमी नग्न को देखेगा तो या घृणा के मारे अपनी आँखो को वन्द कर लेगा या फिर उसके भीतर मनोविकार पैदा हो जायेंगे।

तो यह यथार्थवाद यथार्थ होते हुए भी लोगो के लिए अमङ्गलकारी है। नग्न सौन्दर्य को आदर्श का आवरण देना ही होगा। अन्यथा वह यथार्थवाद समाज के लिए घातक सिद्ध हो जाता है। इसीलिए आज पाश्चात्य-जगत मे खाओ पीओ और मौज उडाओ की निम्न भौतिक भूमिका ही रह गयी है क्षुधा को शान्त कर लो, काम पिपासा को शान्त कर लो, वस इतना सा ही रह गया है वहाँ का जीवन-दर्शन, वहाँ की विचार धारा। अत दोनो का सामञ्जस्य होना चाहिए। पुनरुद्धार होना चाहिये।

मैंने पढा है, जब सिकन्दर भारत पर आक्रमण करने आया था उस समय की वात है कि सिकन्दर पोरस की राज्य-सभामे वैठा हुआ था। दोनो वातचीत कर रहे थे। इतने मे ही दो प्रजाजन वहाँ पर पहुचे और न्याय की माँग की। तो पोरस ने कहा कि मैंने इस आदमी से एक साल पहले १० एकड जमीन खरीदी थी। अब वरसात का मौसम आ गया तो मैंने हल जोतवाना शुरू किया। जब हल जुत रहा था तो

अचानक जमीन मे से एक घडा निकला। वह घडा स्वर्ण मुद्राओ से भरा हुआ है। मैंने वह घडा ले जाकर इस आदमी को दिया जिससे कि मैंने जमीन खरीदी थी। क्योकि मैंने तो केवल जमीन ही खरीदी थी न कि यह स्वर्ण-मुद्रा का घडा। इसलिए इस स्वर्ण मुहरो से भरे हुए घड़े पर मेरा कोई अधिकार नही है। लेकिन यह आदमी घड़ा लेता ही नही है और कहता है कि जब जमीन को मैंने बेच दिया है तो उस जमीन से यदि सोना भी निकलता है तो उस पर भी मेरा अधिकार नही और उसमे यदि खेत से कुछ उगता भी नही है तो उससे भी मेरा कोई सम्बन्ध नही। दूसरे आदमी को पोरस ने कहा कि भाई! जब वह देने को तैयार है तब तुम इस स्वर्ण मुद्राओ को क्यो नही लेता तो उस आदमी ने कहा कि मेरा अधिकार ही नही है इस पर। जमीन मैंने बेच दी है अब उसमे जो भी निकलेगा सब पर उसका अधिकार है। मैं इसको नही लूगा। बडी समस्या आ गयी। हम लोगो के तो स्वर्ण की मुहरें निकलती ही नही है और निकल जाये तो कोई किसी को खबर ही नही देता। जबकि पोरस के सामने दो व्यक्ति ऐसे खडे हैं एक कहता है कि स्वर्ण मुहरो से भरा घडा मैं नही लूंगा और दूसरे ने कहा कि मैं नही लूगा। उसके सामने बडी विचित्र समस्या है। सिकन्दर ने सोचा पोरस इसका कैसा न्याय करता है। मैं भारत के आदर्शवाद के बारे मे काफी सुन चुका हू। आदर्श प्रजाजन मे तो देख रहा हू, राजा मे कैसा आदर्शवाद है यह अब देखने जैसा है पोरस ने दोनो से पूछा कि क्या तुम्हारे कोई सन्तान है? एक ने कहा हाँ, मेरे एक पुत्र है। दूसरे ने कहा कि मेरे एक पुत्री है। पोरस ने कहा कि तब एक काम करो और वह यह कि तुम दोनो अपनी सन्तानो का परस्पर विवाह करवा दो और दहेज के रूप मे यह धन का घडा दे दो। सिकन्दर चकित था इसे कहते हैं यथार्थ आदर्शवाद।

यथार्थ का आदर्शात्मक और आदर्श का यथार्थात्मक प्रस्तुतिकरण कितने सुन्दर ढग से हुआ है। आज भी ऐसा ही दृष्टिकोण जरूरी है। सत्य हालाकि यथार्थ-वाद मे है किन्तु वह यथार्थवाद किस काम का, जो आदर्श पूर्ण न हो और वह आदर्श भी नकाम है जो यथार्थ की हिंसा कर दे। यथार्थ की आदर्शात्मक अभिव्यक्ति होनी चाहिये। इसी तरह आदर्श की भी यथार्थ तथा सत्य पूरित अभिव्यक्ति होनी चाहिए। सत्य तो है, यथार्थ और आदर्श के सगम मे। ऐसा सत्य ही शिव और सुन्दर रूप है।●

निसीहि : मानसिक विरेचन की प्रक्रिया

प्रवचन- समय

११ जुलाई १९८५

प्रवचन-स्थल

जैन भवन, कलकत्ता

प्रश्न है ' मन्दिर आदि मे आते समय 'निसीहि-निसीहि' कहना क्या केवल कहना ही है, या इसका कोई आन्तरिक एव सैद्धान्तिक मर्म भी है ?

निसीहि द्वन्द्वातीत अवस्था तक पहुँचने की एक मनोवैज्ञानिक एव सैद्धान्तिक पद्धति है। निसीहि चित्त एव मस्तिष्क को शुभतम करने की प्रक्रिया है। निसीहि से अशुभ की निर्जरा होती है। मन्दिर, उपाश्रय या गुरु-चरणो मे उपस्थित होते समय निसीहि निसीहि कहने का मतलव यही है कि इधर-उधर के वाह्य विकल्पो और द्वन्द्वो का निषेध एव निराकरण करके धर्म-साधना के मार्ग मे प्रस्तुत होना। मस्तिष्क मे जितना भी कूडा-कचरा भरा है, सवको खाली कर देना। सारे सासारिक सम्बन्धो से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना। खोपडा विल्कुल खाली रहना चाहिए, मन्दिर मे प्रवेश करते समय मन्दिर मे जाते समय यदि मस्तिष्क का पात्र सर्वथा खाली होगा तभी उसमे परमात्मतत्व का अमृत-रस भरेगा।

गुरु-चरणो मे जायेंगे, निसीहि-निसीहि कहकर यानी हमारे मस्तिष्क का पात्र वुद्धि का पात्र रिक्त होगा, तभी गुरु उस पात्र को भरने मे समर्थ हो पायेगा। भिखारी का पात्र अगर पहले से ही भरा है, तव दाता उसमें और क्या डालेगा। किसी को कुछ पाना है तो यह सर्वप्रथम सूत्र है कि अपने पात्र को खाली रखो। पहले प्यास जगाओ, फिर प्याऊ के पास जाओ।

आस्पेसकी जव गुरजिएफ के पास ज्ञान लेने गया, तव गुरजिएफ ने उसे एक पन्ना दिया और कहा कि तुम्हें क्या आता है ? तुम्हे जो भी आता हो, इस पन्ने मे लिख दो गुजरिएफ की यह एक साधनामूलक प्रकिया थी। आस्पेंसकी प्रसिद्ध कवि, दार्शनिक और विचारक। किन्तु वह एक शब्द भी पृष्ठ मे न लिख सका। उसे यह वोध हुआ कि गुरजिएफ से यदि मुझे कुछ पाना है तो मुझे अज्ञानी वालक की तरह पेश आना होगा। विल्कुल अवोध आस्पेसकी उसी क्षण गुरजिएफ के चरणो मे आ गिरा और कहा कि मैं कुछ नही जानता। मेरे पास लिखने को कुछ नही। गुरजिएफ वडे प्रसन्न हुए। उन्होने उसे वहुत कुछ दिया। उसका पात्र आत्मज्ञान से लवालव कर दिया, वाहर छलकने जितना।

किन्तु लोग जाते हैं मन्दिर, गुरुद्वारो मे कुछ न कुछ लेकर जाते है। वे न भरे होते हैं न खाली। उनकी 'अधजल गगरी छलकती' है। भरा हुआ नही छलकता, अर्द्धभरित घडा छलकता है। छलकने का मतलव ही है कि घडा न तो भरा है, और न खाली। 'भरिया जो छलके नही छलके सो अद्धा। वे गुरुद्वारो और मन्दिरो मे जाकर भी वैसे ही पात्रवाले रह जाते है, जैसे पहले थे। कोल्हू के वैल की यात्रा समझो।

जो लोग मस्तिष्क मे कूडा-कचरा लेकर जाते हैं विचारो का विकल्पो का, उनके भीतर परमात्मा के अमृत-स्रोत का विस्फोटन किस प्रकार से हो पायेगा । चट्टानो के हटाने के वाद स्रोत फूटता है । चट्टाने स्रोत की अवरोधक हैं । इसलिए सवसे पहले भगवान् महावीर ने वताया निसीहि-निसीहि । चट्टानो को हटा दो । गीता की भापा मे उसी के वाद स्थित प्रज्ञा का झरना कलकल निनाद करता हुआ दिखाई देगा । वाह्य विकल्पो एव द्वन्द्वो का निषेध कर दो विल्कुल । सारे कूडे-कचरे को निकालकर वाहर फेंक दो । मन शुद्ध हो । विचार शुद्ध हो शरीर शुद्ध हो । आत्मा तो स्वत शुद्धता की भूमिका पर आ जायेगी । निसीहि-क्रमिक यात्रा है । अशुभ से शुभ की ओर और शुभ से शुद्धत्व की ओर यात्रा गतिमान हो । अशुभता और मलयुतता को तलाक दें ।

इसे थोडा समझें । कोई आदमी गन्दे हाथो वाला है । हाथ मे कीचड लगा हुआ है या शौच-क्रिया के हाथ हैं, तो क्या वे परमात्मा या माता-पिता के चरणो को स्पर्श करने योग्य हैं ? नही है । उन गन्दे हाथो से कोई भी आदमी न तो भोजन करेगा, न मिष्टान्न खायेगा । स्वच्छता प्रथम आवश्यक है ।

इसी तरह कोई पात्र गन्दा है । उस गन्दे पात्र मे दूध डालने से कोई फायदा नही है । पात्र झूठा है तो झूठे पात्र से कोई भी व्यक्ति पानी नही पीयेगा । वच्चे लोग स्लेट-पाटी लिखते हैं । अगर पाटी पहले से ही भरी हुई है, यानी लिखी हुई है तो उस पर और कुछ लिखने का कोई सार नही हैं, जव तक कि पहले का लिखा हुआ मिटा न दें ।

तो मन्दिर उपाश्रय या गुरु-चरणो मे जहाँ भी जाते हैं, सवसे पहले मन के इस कूडे-दान को साफ करें । स्लेट-पाटी पर नये लेखन हेतु पहले के लिखे हुए को हटाना होगा । जमीन पर वैठने से पूर्व जमीन का परिष्कार करना होगा । परमात्मा के पवित्र चरणो का स्पर्श करना है, तो पहले गन्दे हाथो को धोना होगा । यदि पात्र मे दूध डालना है तो पहले पात्र को साफ करना होगा । मस्तिष्क मे जितना भी कूडा-कचरा भरा है, वासना एव विकार है, सवको निकाल दें । निसीहिरूप 'फिल्टर मशीन' मे अपने विचारो के जल को निर्मल तथा स्वच्छ कर लें । 'सार-सार को गहि रहे थोथा देई उडाय'—यह कवीर की भापा है ।

मैंने सुना है । दो मित्र पिकनिक करने के लिए कलकत्ता के इस वडे वाजार से रवाना हुए । पहले मित्र ने कहा कि अरे यार ! वडी दुर्गन्ध आ रही है । दूसरे ने कहा कि 'दुर्गन्ध ? यह स्थान ही ऐसा है । न सफाई, न कोई वात । आगे चल रहे हैं ईडन गार्डन ।' वहाँ शुद्ध वातावरण है ।' वात जच गयी । दोनो चल पडे । ईडन-गार्डन पहुँचे तो भी दुर्गन्ध वैसी की वैसी । पहला मित्र चकित हुआ । फूलो के वीच भी दुर्गन्ध ? मन उचटा । मजा सारा किरकिरा हो गया । चलो, वूटानिकल गार्डन जो कि भारत का सवसे वडा और अच्छा वगीचा है । पर, वहाँ पर भी वही गन्ध ।

अबकी बार पहले मित्र को लगा कि जरूर कोई इसमे राज है। उसने अपने मित्र से कहा कि यार! यह दुर्गन्ध और कही से नही, तेरे भीतर से ही आ रही है। क्या आज स्नान किया? दूसरे ने कहा कि सुबह से दो बार स्नान किया है हुबली मे। पहले मित्र ने कहा कि भले ही तुमने दो बार क्यो दस बार स्नान किया हो, मगर दुर्गन्ध तुमसे ही आनी है। अपना कमीज और अपना पेंट खोलो। दूसरे ने कहा कि यह क्या बदमतीजी है। लेकिन पहला अड गया। आखिर उसने अपना कमीज और अपनी पैंट को खोलकर दिखा दिया। दोनो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि पैंट भीतर से सडी थी और गन्ध दे रही थी। पहले मित्र ने कहा कि यह क्या है? दूसरा बोला, यह कोई आज का थोडे ही है, कई दिन पहले का है। पहला बोला कि फूलो की सैर करने से पहले अपनी गन्दगी तो दूर करो। वरना फूलों की सुगन्ध स्वय की दुर्गन्ध के सामने फीकी-फीकी मालूम पडेगी। सडे वस्त्र को धोना ही निसीहि है।

क्यों तू मैली चादर ओढे
धर्म—जलाशय मे तूं धोले।

बिलकुल सही बात है यह।

कर्म कलक युगों से सचित
प्रज्ञा के अधर यूं बोले।
निर्विकार और वीतराग बन,
कर्मों की कथरी को धोले॥

आत्म-वस्त्र कर्म के कलक से मैला है। धोना है इसे। धोना यानी निसीहि से गुजरना है।

निसीहि-नीसीहि—यह महावीर स्वामी का बडा जबर्दस्त शब्द है। निसीहि द्वन्द्वातीत अवस्था तक पहुँचने की न केवल सैद्धान्तिक बल्कि मनोवैज्ञानिक पद्धति है। सारा योग-शास्त्र इस निसीहि शब्द मे आया हुआ है। योग-शास्त्र का प्रथम चरण है यह निसीहि योग की एक प्रकिया है—वह है विरेचन की। आदमी योग शुरु करता है तो सबसे पहले उसे विरेचन करना पडता है। विरेचन यानी कि खाली करना अपने को। और वह विरेचन योगशास्त्रीय लोग साँसो के द्वारा करवाते हैं। प्राणायाम की तीन विधियाँ होती हैं,—पूरक, कुम्भक और रेचक। प्राण-वायु को बारह अगुल प्रमाण बाहर निकालकर उसे वही रोके रखना पूरक है। इसी प्रकार प्राण-वायु को भीतर रोक देना कुम्भक है और प्राण-वायु का बाहर-भीतर रेचन करना रेचक है। प्राणायाम की ये विधियाँ मस्तिष्क की शुद्धि एव मन की एकाग्रता मे परम सहायक बताई जाती है। निसीहि प्राणायाम का अर्थ और इति दोनो है। प्रारम्भ भी निसीहि है और समापन भी निसीहि। यानी पानी से भाप, भाप से बादल, फिर बादल से पानी इसी को कहते है 'वाटर सायकिल'।

भगवान् महावीर का निसीहि और योगशास्त्र का विरेचन बिल्कुल एक ही हैं। 'मन एक, दुइ गात'। दोनो का अर्थ एक समान है, अन्तर शब्दो का है। शब्द दो हैं, किन्तु शब्दार्थ एक। यो समझिये कि ये दोनो पर्यायवाची शब्द हैं। इसीलिए महावीर का निसीहि योगकुण्डलिनी उपनिषद तथा पतजल-योगदर्शन के काफी साम्य है। महावीर के निसीहि दृष्टिकोण का प्रभाव परवर्ती सभी योगशास्त्रियो पर रहा है। महावीर के सत्य को सभी ने सत्य रूप स्वीकार किया। ध्यान, साधना और योग मे यात्रा करने का प्रस्थान-विन्दु वना निसीहि।

निसीहि और विरेचन दोनो को यदि तुलनात्मक अर्थ की दृष्टि से देखा जाये तो निसीहि विशेष अर्थ-गाम्भीर्य रखता है। विरेचन मे तो मात्र अशुभ का निष्कासन होता है, जवकि निसीहि मे न केवल अशुभ का विरेचन होता है, अपितु शुभ का प्ररूपण भी होता है। अशुभ के तुम्वे की लताओ को जड से उखाड कर फेंका जाता है और शुभ का मधुर वीजारोपण होता है।

एक वाल्टी मे वर्षा का पानी भरा है। उसमे मिट्टी आदि भी है। उसमे फिटकडी डालकर पानी को गोलाकार घुमाओ। गन्दगी नीचे वैठ जायेगी, और पानी साफ दिखायी देने लगेगा। यह हुआ विरेचन। किन्तु इससे पानी पूर्णरूपेण स्वच्छ नही हुआ। निसीहि की क्रिया अभी समाप्त नही हुई। वास्तव मे निसीहि की क्रिया अव शुरु होगी। और वह यह कि पानी को अलग वर्तन मे निकाल लो और नीचे जमे कचरे को वाल्टी से वाहर फेंक दो। पुन' वह पानी वाल्टी मे डाल दो अव पानी अच्छी तरह से निर्मल हो गया।

तो योगशास्त्र मे जो विरेचन की प्रक्रिया वतलाई गई, योग प्रारम्भ करने से पहले, वैसे ही महावीर वताते हैं निसीहि की प्रक्रिया, विरेचन की प्रक्रिया, कि तुम अपनी आत्मा मे परमात्मा को प्रगट करना चाहते हो, निज मे जिनत्व की शोध करना चाहते हो तो सवसे पहले निसीहि को घटित करो। ससार से जितने भी सम्वन्ध हैं, जितने भी वाह्य विकल्प हैं, सवके सव वाहर छोड आओ। निसीहि कहो और मन्दिर में प्रवेश करो।

परमात्मा के मन्दिर मे जाते हैं, तो केवल परमात्मा के प्रति भक्ति-भावना को ही लेकर जायें। रसमयता मात्र परमात्मा के प्रति हो। कामभोग का रसिक यदि मन्दिर मे जाएगा, तो उसके मन में ईश-मन्दिर मे भी कामभोग की वार्ते मंडराएँगी। इसलिए मन्दिर मे केवल परमात्म-रस हो, क्योकि 'रसो वै स.' वह रस रूप है। इसके अलावा जिस भी चीज को ले जाएँगे, वह सव कूडा-कचरा ही होगा, मात्र पागलपन इकट्ठा करना है। मन्दिर मे जाना और जाते समय दूसरे-दूसरे तरह के द्वन्द्वो और विकल्पो को साथ मे ले जाना अपने को पागलखाने मे ले जाना है। वह व्यक्ति एक पागल की तरह मात्र अपने ही विचारो मे खोया है, परमात्मा के प्रति नही।

मैंने सुना है कि एक आदमी समुद्री मार्ग से पानी के जहाज मे विदेशयात्रा के लिए चढा। जहाज चल पडा। जहाज के चलते ही वह आदमी कप्तान के पास पहुचा और कहा कि कैसे साहब पेट्रोल-डीजल सब बराबर ले लिया है। कप्तान ने कहा हाँ भाई, सब ठीक है। डीजल पूरा ले लिया है। तुम जाओ और अपनी कुर्सी पर बैठो। थोडी देर बाद वह आदमी फिर कप्तान के पास गया और कहा कि साहब मशीन वगैरह तो सब ठीक है ? कप्तान आखिर झूमला उठा। उसने कहा कि सब ठीक-ठाक है। ये सब काम हमारा है। तुम क्यो चिन्ता करते हो। तुम तो इस जहाज के कप्तान नही हो। यात्री हो यात्रा करो। वह आदमी बोला, साहब ! अभी तो आप गुस्सा करते हैं। लेकिन जब जहाज बीच रास्ते मे कही खराब हो जाये तो मुझे यह मत कहना कि जरा नीचे उतर कर जहाज को धक्का लगाओ। क्योकि मैं जितनी बार टैक्सी और बस मे चढा हू, मुझे रास्ते मे धक्के देने पडे हैं।

तो लोग भी जब मन्दिर जाते हैं, तो वे भी उसे घर की तरह समझ लेते हैं। कहां टैक्सी-बस और कहाँ जहाज ! कहाँ गृहस्थ में रचा पचा घर और कहाँ मन्दिर। दोनो मे कोई तुलना नही। जहाज में मन्दिर में जाते हैं तो वहाँ टैक्सी-बस और नीचे उतरकर धक्का लगाने की बात मात्र पागलपन है। इसीलिए मन्दिर में भी वह पागलपन भडकेगा, नीचे उतरकर जहाज को धक्का लगाने जैसा।

सच्चा निसीहि न होने के कारण, सच्चा विरेचन न हो पाने के कारण आदमी मन्दिर में जाकर परमात्मा का ध्यान करता है, परन्तु जैसे ही परमात्मा का ध्यान करने बैठा, वैसे ही परमात्मा की प्रतिमा और छवि तो मनोदृष्टि से हट जायेगी और उसके मन में वही घिसे-पिटे पुराने सडियल विचार आने शुरु हो जाएँगे। एक के बाद एक, लगातार। एक भेड के पीछे दूसरी भेड, भेडचाल की तरह। इतने विचार पहले कभी नही कौंधे, जितने इस समय कौंधते हैं। कभी बीबी-बच्चे याद आयेंगे, तो कभी कोई रूप सम्पन्न पुरुष-स्त्री याद आयेंगे तो कभी बाजार-व्यवसाय। कारण, निसीहि तथा विरेचन वस्तुतः नहीं हो पाया। भला जो व्यक्ति बिना टॉर्च लिये अन्धेरे कमरे में जाएगा, तो वह ठोकर खाएगा ही। टॉर्च जलाओ, अन्धेरा स्वतः साफ। निसीहि बस ऐसे ही है।

मैंने सुन रखा है कि एक आदमी की टी. वी. खराब हो गयी। उसे ठीक कराने के लिये वह रिपेयरर के पास ले गया। कहा कि मेरा टेलीविजन खराब हो गया है। यह चलता ही नही। इसे ठीक कराना है। कितना रुपया लोगे ? रिपेयरर ने कहा, बाबु ! रुपये पैसे का सवाल तो बाद में, पहले यह मालूम पडे कि खराबी क्या है। रिपेयरर ने जैसे ही टेलीविजन खोला तो देखा कि उस टेलीविजन के डिब्बे में पाच-सात चूहिया मरी हुई है। चूहियो की गन्दगी भी भीतर पडी है। रिपेयरर को लगा कि इस टेलीविजन में केवल सफाई की जरुरत है, और कुछ खराबी नही। उसने सफाई कर दी। टेलीविजन शुरु किया और टेलीविजन चल पडा।

यह हुआ विरेचन और निसीहि का आन्तरिक पक्ष लोग मन्दिर जाते है क्योकि उनके जीवन का टेलीविजन अच्छी तरह नही चलता। वह खराव है और विचारो के पुर्जे जाम हैं तथा अस्त-व्यस्त हैं। तो मैं कहूंगा कि सफाई करो, विरेचन-निसीहि। परमात्मा की अनन्त ज्योति के चलचित्र जीवन के पर्दे पर उभरते हुए परिलक्षित होगें।

आजकल मैं देखता हू कि आदमी निसीहि-निसीहि कहता तो है, लेकिन वह केवल कहना मात्र है। तोते की रटन की तरह। मालिक ने सीखा रखा है कि 'तोता विल्ली आए तव उड जाना'। विल्ली उपस्थित होने पर भी तोता केवल यही वोलता है, पुन. पुन. पुनरावृत्ति। वहुत से लोग भी तो ऐसा ही करते हैं। धार्मिक व्यक्ति है, सुना हुआ है कि जिनेश्वर के मन्दिर में प्रवेश करते समय निसीहि-निसीहि तीन वार कहना चाहिये। वस कह डाला। यही तो भूल है। वस्तुत निसीहि-निसीहि तीन वार कहना नही चाहिए, अपितु निसीहि-निसीहि तीन वार करना चाहिये। कहने पर नही, वलिक करने पर जोर हो। कथनी नही, करनी प्रवल हो। टन भर कथनी और कण भर की करनी—दोनो मे कणभर की कथनी ज्यादा उत्कृष्ट है। लोग निसीहि के मर्म को और उसके रहस्य को समझते नही हैं। वस, केवल कहता है, निसीहि-निसीहि। अरे भाई! यह क्यो भूल रहे हो कि मुँह मीठा तो लड्डू खाने से होगा न कि लड्डू-लड्डू कहने से।

मन्दिर मे प्रवेश करने का पहला द्वार ही निसीहि है। ध्यान वाद मे घटेगा, साधना वाद मे घटित होगी। आत्मानुभूति या परमात्मानुभूति की वातें तो वाद की हैं, सवसे पहले घटना घटेगी निसीहि की। टाँग टूटेगी, तो अस्पताल जायेंगे। वीज होगा तो वृक्ष वनेगा। निसीहि ही नही, तो आत्मा, परमात्मा की वातें ढपोर शख की तरह होगी।

ढपोर शख उसे कहते हैं यानी कि उसको कहो कि शख महाराज एक लाख रुपये दे दो। तो ढपोर शख कहेगा, अजी! दो लाख ले लो। आदमी कहेगा कि अच्छा ठीक है, दो लाख दे दो तो शख कहेगा, दो लाख का क्या देना, चार लाख ले लो। मागने वाला कहेगा ये तो और अच्छी वात है। चार लाख दे दो। ढपोर शख कहेगा आठ लाख ले लो। वस ढपोर शख दुगुना-दुगुना कहेगा मात्र देने-लेने का वहाँ काम नही। जो केवल वोलता है, कहता मात्र है, वह ढपोर शख तो उलटा भारभूत है। उठाकर नाली मे फेंको ऐसे वक्ता ढपोरशख को। जोर कहने पर नही करने पर हो। निसीहि कहो मत करो।

यानी कि मस्तिष्क मे जितना भी भार है, निसीहि उस भार से छुटकारा दिलाने मे सहायक है। निसीहि तनाव से मुक्ति का उपाय है। निसीहि अन्तर्यात्रा एव मन को केन्द्रित करने का सोपान है। निसीहि, व्यक्ति जो इधर-उधर भटक रहा है,

उस भटकाव को रोकने का साधन है। निसीहि यानी कि आत्म-विरेचन है। निसीहि यानी कि मस्तिष्क-शुद्धि है। निसीहि यानी निर्विकल्प समाधि है। निसीहि यानी ससार मे जिन-जिन से भी सम्बन्ध है, उन-उन से मुक्ति-बोध पाने का माध्यम है। निसीहि यानी स्वय की स्वय मे वापसी। प्रतिक्रमण, पर्युषण और प्रत्यावर्तन ये सब निसीहि को ही उपलब्ध होने के माध्यम हैं। सचमुच, भगवान तक और आत्मा तक पहुँचने का रास्ता निसीहि ही है। निसीहि होने के पश्चात् शेष रहता है मात्र अतीन्द्रिय सुख। यानी आत्म-जात निराकुल और द्वन्द्वातीत सम्यक् आनन्दानुभूति। सब कुछ आ गया इस निसीहि मे।

निसीहि गुप्तिधर्म से भी श्रेष्ठ है। उत्तराध्ययन सूत्र आदि मे अष्टप्रवचन-माता का विधान है। पाच समिति और तीन गुप्ति—ये हुई अष्ट प्रवचन माता। समिति है यतनाचारपूर्वक प्रवृत्ति और गुप्ति है समितियो मे सहयोगी मानसिक वाचिक और शारीरिक प्रवृत्तियो का गोपन। जबकि निसीहि मे, पहले गुप्ति काम करेगी। मतलब यह है कि पहले सभी प्रवृत्तियो का गोपन करो और तत्पश्चात् प्रवृत्तियो का विरेचन करो। निसीहि रूपी राजहस के द्वारा अशुभ और शुभ प्रवृत्तियो को अलग-अलग करो। पानी अलग, दूध अलग – प्राचीन भारतीय न्याय पद्धति की तरह। शुभ प्रवृत्तियो का दीपक जीवन से जोड़ें, ताकि अशुभ प्रवृत्तियो का अन्धकार समाप्त हो। तत्पश्चात् समिति-आश्रित बनें यानी यतनाचारपूर्वक, उपयोग और विवेकपूर्वक प्रवृत्ति करें।

तो सर्वस्व समाहित है निसीहि मे। साधना के वृक्ष की जडो को सुरक्षित करने वाला है यह। ताकि बहिरात्मा के दीमक उसे भीतर ही भीतर खोखला और श्रीशून्य न कर दे। आदमी यदि इसे समझ जाये तो उसे बहुत कुछ मिल गया। मूल सूत्र उसने हस्तगत कर लिया। किन्तु लोग मन्दिर मे जाते हैं, कूड़े-कचरे के साथ। साधना-वृक्ष का सिंचन करते हैं, दीमको के साथ।

आप सुनते होगे कभी कभी कि अमुक साधु वापस गृहस्थ हो गया। आखिर क्या कारण ? मूलतः जब उसने सन्यास धारण किया था, उस समय या तो भावावेश था या फिर अन्य कोई कारण। और, जिस आदमी ने दीक्षा मे सच्चा निसीहि किया, ससार और मनोगति की सच्ची समीक्षा की, विकल्पो का विरेचन करके दीक्षा का सम्यक् सकल्प किया, वह आदमी कभी पथच्युत नही हो सकता। दुर्भाग्य या दैव-विडम्बना हो, तो अलग बात है आर्द्रकुमार आदि की भाँति।

मैं सुनता हू मन्दिर मे बहुत बार कि लोग एक तरफ तो हाथ से भगवान की पूजा करते हैं और दूसरी तरफ मुँह से बिदाम की कतलियो की बातें करते हैं। विरेचन न होने के कारण लोगो को मन्दिर मे भी कतलियाँ राजभोग जैसी चीजें याद आती हैं। लोग मन्दिर मे बातें करते हैं शादी-विवाह की। तुम्हारा पुत्र कितना बडा है ? बीस

वर्ष का। तब वह लड़की ठीक बैठेगी। यही सब बाते। तो फिर जब ध्यान करने बैठते हैं तो स्वाभाविक है कि ध्याता के सामने वही दर्शित होगा जो उसके मन मे छिपा है। मन मे छिपे भाव ही विचार बनते हैं। मन के बीज से ही विचारो की लताएँ फैलती हैं। मेरे पास अनेक लोग आते हैं और कहते हैं कि ऐसे तो विचार शान्त रहते हैं, कोई ज्यादा नही पैदा होते, किन्तु ध्यान करते समय तो पता नही इतने विचार कहाँ से आ जाते हैं ? मैं कहता हू कि तुम्हारे लिए अभी ध्यान फलीभूत नही होगा। ध्यान के लिए योग्य पात्रता चाहिये। अभी तो विरेचन को तुम अपनी साधना का अङ्ग बनाओ। बिना विरेचन के ध्यान मे विचारो की आँधी उठेगी कभी व्यवसाय के विचार तो कभी रूपसुन्दरियों के विचार—दुनिया भर के सारे विचार तुम्हे कष्ट देंगे। वे विचार कहेगे कि तुम कहाँ मन्दिर मे आकर बैठे हो, चलो बाहर ससार की सैर करने खाओ, पीओ, मौज उडाओ, सैलानी जीवन जियो। उमरखय्याम की बातो को चरितार्थ करो। कहाँ आसन लगाकर बैठे हो। बस, विरेचन न होने के कारण विचारो का ध्याता पर साम्राज्य हो जाता है और इस तरह ध्याता अपने विचारों के पराधीन बन जाता है। वह भूल-भूलैया के अध गलियारो मे भटक जाता है।

इसीलिए पतजलि ने विधान किया विरेचन का और महावीर ने निसीहि का। महावीर का इस सम्बन्ध मे पतजलि पर स्पष्ट प्रभाव रहा। मन्दिर-प्रवेश और साधना-प्रवेश के लिए यह वरदान रूप है।

निसीहि-प्रक्रिया का प्रथम सूत्र है अहकार का विरेचन। कारण, लोग मदिर मे जाते समय भी अहकार के गज पर सवार होकर जाते हैं, जो कि उन्हे दलदल मे ले जाता है। मन्दिर जानेवाले भक्तो का अहकार आधुनिक गोल्ड मेडल है। किसी के कमीज पर ट्रस्टी का गोल्ड मेडल है, तो किसी की कमीज पर पद्मश्री का गोल्ड मेडल है, तो किसी की कमीज पर समाज-रत्न का गोल्ड मेडल है। ये गोल्ड मेडल मस्तिष्क मे रहते हैं। अहकार के रूप मे इनकी चमक प्रकट होती है। गोल्ड मेडल यानि कि अह के मेडल, अह के पोषक तत्त्व।

आदमी मन्दिर मे जाता है, अहकार के इन गोल्डमेडलस को लेकर। जबकि अह और मैंपन के भाव मन्दिर मे साथ ले जाएंगे, तो फिर मन्दिर भी एक सासारिक घर हो जायेगा। वह देवालय नही रहेगा फिर अपितु अह पोषक केन्द्र बन जायेगा।

मैं का अहंकार
कर्त्ता होने की दुर्बुद्धिका
परित्याग कर
ज्ञाता-द्रष्टा बन।'

अहकार के ये गोल्डमेडल वास्तव मे जीवन की कमीज पर भार ही होंगे। निसीहि अर्थात् निर्भार होने का पथ।

मन्दिर मे कभी-कभी तो यह भी देखा-सुना जाता है कि कुछेक लोग अपशब्द और गालियाँ तक भी प्रयोग कर लेते हैं। कभी-कभी तो नौबत यहाँ तक आ जाती है कि लोग लडाइयाँ भी कर बैठते हैं मन्दिर मे। जबकि मन्दिर मे तो किसी तरह की ध्वनि न हो, ऐसा प्रयास रखना चाहिये, ताकि अन्य लोगो को अडचन न हो। अब बाजार मे लडे तो बाजार मे लोग उसकी हड्डी पसली एक कर दें। इसलिए लडते हैं मन्दिर मे ताकि कोई कुछ ज्यादा बोल न सके। मन्दिर मे भले आदमी आने वालो की भी कमी नही है। अत. सामने वाला आदमी तो हाथ उठा ही नही पायेगा। तो लोग मन्दिर मे लडाइयाँ शुरू करते हैं, गाली गलोच शुरू कर देते हैं मन्दिर मे ही गुस्से के अगार उगलते हैं। यानि समाज को वे यह साफ जाहिर कर देते हैं कि हमारे सस्कार कैसे हैं? इस तरह पूजा-स्थल और साधना-स्थल यो समझो कि एक छोटा युद्धस्थल बन जाता है, घरेलू महाभारत।

दो दिन पूर्व मैं महर्षि ब्रह्मानन्द सरस्वती के जीवन के बारे मे पढ रहा था। ब्रह्मानन्द सरस्वती की एक घटना बडी अच्छी लगी। ब्रह्मानन्द जब युवक थे, तो गये हिमालय मे। हिमालय मे जाकर देखा कि बहुत-से लोग साधना कर रहे है। शान्त-मूर्तियाँ लग रही हैं वे। ब्रह्मानन्द किसी ब्रह्म-दर्शी की खोज मे थे। आखिर उन्हे एक सन्त-योगी के बारे मे जानकारी मिली, जो सर्वज्ञ वीतरागी सन्त माने जाते थे। ब्रह्मानन्द पहुच गये उनके पास और कहा महाराज! आपके योग-ध्यान एव वीतरागता की चर्चा मैंने सुनी है। आप शान्त-मूर्ति हैं। भगवन्! मैं बहुत दूर से आया हू आपके पास। ठड भी लग रही है। क्या थोडी-सी आग मिलेगी आपके पास? तो महाराज ने कहा कि तुम नही जानते कि हम वे साधु हैं जो आग रखना तो दूर छूते भी नही?

ब्रह्मानन्द बोले कि ओह! समझा परन्तु थोडी-सी तो होगी? थोडी-सी से काम चल जायेगा। मैं बर्फ हो रहा हू।

जैसे कलकत्ता के भिखारी लोग होते हैं न, माँगते हैं एक रुपया; तो सेठ कहते हैं कि जा भाई आगे जा कुछ नही है। तब भिखारी कहता है कि बाबू अठन्नी दे दो। वह कहता है कि कुछ नही है चला जा। तो भिखारी कहता है अरे बाबू! चवन्नी दे दो।' अबे कहा न, इतनी बार कह दिया, कम सुनता है। तो भिखारी फिर कह देता है कि अच्छा बाबू रहने दो चवन्नी, अठन्नी, रुपया। प्यास बहुत तेज लगी है, पाँच पैसा ही दे दो। एक गिलास पानी खरीदकर पी लूँगा।

वैसे ही ब्रह्मानन्द ने कहा कि थोडी-सी आग दे दें। देखिये, इत्ती सी।

तो उस साधु ने कहा कि अरे! मैंने कहा न कि हम साधु हैं और आग को साधु छू नही सकता। तब आग हम कहाँ से रखेंगे।

ब्रह्मानन्द अब भी शान्त थे। उन्होने कहा कि जरा देखिये ! आपके आस पास कही छिपी मिल जाये किसी कोने मे हो। थोडी सी होगी तो भी काम चल जायेगा। मात्र रत्ती भर। अच्छा केवल चिनगारी।

उस साधु के साथ ऐसा व्यवहार करनेवाला यह पहला आदमी था। वेवकूफी की भी हद हो गई। वह भी अव्वल दर्जे की। तो उस साधु ने कहा कि तूं मुझे क्या समझता है ? इतनी वार कह दिया कि मेरे पास आग नही है, लेकिन देख रहा हू कि तूं वार-वार मुझसे आग ही आग माँग रहा है। अभी श्राप दे दिया तो तूं खुद आग वन जायेगा।

साधु आग ववुला हो गया। तो ब्रह्मानन्द सरस्वती ने कहा यदि आप किसी का भला नही कर सकते तो वुरा करने का अधिकार कहाँ से प्राप्त हुआ। यदि आपके पास आदमी को आग करने जैसी शक्ति है तो आप वर्फ के एक टुकडे को आग मे वदल दें और एक ठिठुरते इन्सान को वचाएं। इसमे आपकी साधुता है। वुरा करने के लिए तो सारी दुनिया है किन्तु जो हमेशा दूसरो का भला करता है, वही सन्त हैं। और, आप तो कहते हैं कि मेरे पास आग नही है तो फिर ये आग की लपटें कहाँ से आ रही हैं।

सन्त ने कहा कि क्या, आग की लपटें ? हाँ, ब्रह्मानन्द वोले कि आग की लपटें। आपके भीतर अभी तक क्रोध-कपाय है। जो कि भयकर आग है। मैं गुरु की खोज मे हू, ऐसा गुरु जो यथार्थ मे वीतराग हो, कपाय-मुक्त हो। शान्ति और प्रवुद्धता उसका लक्षण है। अच्छा मैं चला। वह साधु ब्रह्मानन्द को निहारता रहा।

तो लोग यही करते हैं। मन्दिर मे भी जाते हैं, हिमालय मे भी जाते हैं लेकिन विरेचन न हो पाने के कारण, निसीहि जीवन्त न हो पाने के कारण उनके भीतर क्रोध की लाल लपटें निकलती रहती हैं, अहकार के गोल्ड मेडल रहते हैं, वासनाओ का कचरा रहता है। निसीहि के विना जो लोग हिमालय मे जाते हैं, मन्दिर मे जाते हैं या गुरु-चरणो मे जाते हैं वे लोग केवल पागलपन को एकत्रित कर रहे हैं। जव आदमी के विचारो पर एक ही विचार से सम्वन्धित अनेक विचार इकट्ठे होते हैं, सतह पर सतह जमते जाते हैं, प्रकट नही करते, वे ही विचार ज्वालामुखी की तरह मानसिक-भूमि मे भड़कते हैं। आदमी उसे सहन नही कर पाता। वह सुधवुध खो वैठता है। लोग उसे पागल कहने लगते है। जैसे पागल आदमी के लिये अपनी पगलाई जताने के लिए एकान्त और भीड दोनो समान है वैसे ही लोगो के लिए ससार और मन्दिर एक समान हो जाता है। वे मन्दिर मे भी भगवान से धन, पुत्र, ऐश्वर्य की माग करेंगे। वे यह भूल जाते हैं कि भगवान् न तो किसी का कुछ छीनते हैं और न किसी को कुछ देते हैं। और यदि छीना-झपटी और देने-लेने का सम्वन्ध मन्दिर से जोड रहे

हैं तो वह अध्यात्म-स्थल नही, अपितु एक सासारिक व्यवसाय-स्थल होगा। ससार तो कीचड है और मन्दिर उससे ऊपर—एक निर्मल कमल।

इसीलिए ज्ञानी मनीषी कहते हैं कि सबसे पहले विरेचन करो, निसीहि हो। मन्दिर मे प्रविष्ट हो गये हो तो बाहर के सारे द्वन्द्वो से मुक्ति पा लो। निसीहि का मतलब ही है तनाव से मुक्ति। आज के युग का सबसे भयकर और असाध्य रोग है मानसिक तनाव। चिकित्सको के द्वारा इस रोग की चिकित्सा कष्टकर है। महावीर दुनिया के महान् चिकित्सक हुए। उन्होने इस रोग को दूर करने की यौगिक एव प्राकृतिक चिकित्सा ढूढ निकाली और वह है निसीहि। मानसिक तनाव से मुक्ति पाने की यह अचूक दवा है।

मस्तिष्क को, चैतसिक जीवन को सस्कारित करने का तरीका है यह। जैसे साबुन के द्वारा वर्तन का सस्कार होता है, व्याकरण के द्वारा भाषा का सस्कार होता है, वैसे ही निसीहि के द्वारा मस्तिष्क और मन का सस्कार होता है। आप लोग अन्त्येष्टि-सस्कार करते हैं। यानि कि मुर्दे को जलाते हैं, शव को। बस, निसीहि मे यही करना है कि मस्तिष्क मे जो कूडा है, जो शव सड रहे हैं, उनका अन्त्येष्टि-सस्कार करना है। यही धर्म है क्योकि मन्दिर के गृह मे मुर्दों का कोई काम नही है। ये तो विपर्याय दुर्गन्ध फैलाएँगे। मन्दिर मे तो चाहिये जीवन तथा जीवन्तता।

तो मन्दिर मे जाओ, चाहे उपाश्रय-स्थानक मे जाओ या गुरु चरणो मे जाओ, कही भी जाओ, निसीहि सबसे पहले जरूरी है।

आदमी के अन्दर जो घास का ढेर है और उस ढेर मे जो सूई खो गई है, बस उस सूई को बचा लो। घास के ढेर मे सूई की खोज—यही साधना है। तो भस्म कर दो घास के ढेर को। मन्दिर मे प्रवेश करते समय लक्ष्य केवल सूई की खोज का रहे। इसके अलावा जितने भी द्वन्द्वो, सासारिक सयोगो के घास के पुलिन्दे हैं, सबसे मुक्ति पाकर मन्दिर मे प्रवेश करो।

जैनागम स्थानागसूत्र मे साधु के लिए श्रमण, भिक्षु मुड, साधु, मुनि, यति आदि १० नाम प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु उनमे मुनि शब्द का प्रचलन अधिक हुआ। बडा सोच-समझकर इस शब्द का प्रयोग हुआ। जैनियो के सबसे महत्वपूर्ण शब्दो मे एक है यह। बडी अर्थवत्ता है इस शब्द की। मुनि यानि कि जिसका मन मौन हो गया है। भीतर मे अब किसी तरह का द्वन्द्व नही है। कोलाहल रहित और द्वन्द्व से अतीत विचारो की उपज—यही मुनित्व की अभिव्यक्ति है। जो परमात्मा के मन्दिर मे जाता है, वह बिल्कुल मुनि के रूप का ही होना चाहिये।

मन्दिर मे प्रविष्ट हुए धर्म-साधना मे उपस्थित होने के लिए। परमात्मा के चरणो मे समर्पित हो गये और कहा कि भगवान ! हम आपके चरणो मे समर्पित हो गये और आपने जो मार्ग बताया है, उसे हम अगीकार करते हैं। और, यह कहते-कहते ही वह आवस्सहि कहता है और पुन ससार मे लौट आता है।

भगवान् महावीर ने ऐसे व्यक्तियो के लिए शब्द प्रयोग किया भक्त। यानि कि जो भगवत्ता को पाने के लिए प्रयासशील है, वह भक्त। लेकिन भगवत्ता उसे ही मिलेगी जिसके जीवन का पात्र मजा-मजाया साफ-सुथरा है। विरेचित जीवन के पात्र मे ही परमात्मा का अमृत भर सकता है। 'अमीझर' बन जायेगा वह। इसके अलावा और कोई आदमी भर नही सकता। भगवत्ता कोई भीख थोडी ही है, कि मागो और मिल गई। भगवत्ता मे रमण करने से भगवत्ता मिलती है। मिलती है, कहना भी ठीक नही, प्रकट होती है।

तो मनुष्य अथवा जो कोई व्यक्ति मन्दिर मे जाता है, परमात्मा के चरणो मे जाता है, सबसे पहले निसीहि की प्रक्रिया को करें। योगशास्त्र की विरेचन को सबसे पहले कर लें। तभी वह आगे बढ पायेगा। उसका विकास—एवलूशन तत्पश्चात् ही सम्भव है। वरना मन मे जो कूडा-कचरा होगा, मन्दिर मे भी जायेंगे, तो मन्दिर मे भी ध्यान मे वही कूडा-कचरा आयेगा।

मैंने सुना है कि एक आदमी अपनी पतग उडा रहा था। इतने मे ही आकाश मे एक आदमी पहुचा हेलिकॉप्टर लेकर। उस आदमी के हाथ मे एक कांटेदार झाड था। उसने उस झाड को दे मारा पतग की डोर पर। उसकी पतग बिचारी बीच मे ही कट गई। और, वह पतग को झाड मे लेकर अपने हेलिकॉप्टर को आगे रफ्तार से बढा ले गया।

इसी तरह जो व्यक्ति मन्दिर मे जाता है, वह आदमी पतग तो उडाता है मन्दिर मे, किन्तु उसके भीतर जो दूसरे-दूसरे प्रकार के द्वन्द्वमूलक जो-जो भी भाव हैं, वे हेलिकॉप्टर बनकर और अपने झाड-झखाडो के द्वारा या ढेरिया डालकर और जो परमात्मा के मन्दिर में पतग उड रही है, वह टूट जाती है।

तो मन्दिर मे आदमी जाये, लेकिन बिल्कुल निसीहि बहकर। केवल कहना ही नही है अपितु निसीहिमय होना है। निसीहि हुआ नही और निसीहि कह दिया यह तो सब बकवास है। 'गुर्णविहीना बहु जलपयन्ति' निसीहि आन्तरिक भावो से हो फिर तो 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'। इसलिए भीतरतम मे जितनी भी वृत्ति मे आसक्ति और विचारो मे आग्रह तथा सघर्ष है सब शान्त हो। मन मे जितने भी द्वन्द्व हैं, सबका विरेचन हो। जीवन के पात्र को इतना निर्मल करके जायें कि भगवान् यदि उसमे दूध डाले तो वह दूध गदगी के कारण फटे नही। पात्र ऐसा हो इतना पवित्र हो कि यदि उसमे अमृत भी उडेला जाये तो वह आदमी उसे पाकर अमर हो जाये।

अश भर विष हो, पात्र भर अमृत को भी विष कर देता है। शब्द-कोश मे तो विष और अमृत दोनो का उत्पत्ति-स्थान अलग-अलग बताया गया है। किन्तु जीवन-कोश मे दोनो का उत्पत्ति स्थान एक ही है। जीवन में जहां विष पैदा होता है,

वही अमृत पैदा होता है। वास्तव मे अमृत का विकृत रूप ही विष है। और विष का सुकृत रूप ही अमृत है। इसलिए जीवन को अमृतमय बनाने के लिए विकृत विष का निसीहि और सस्कार होना आवश्यक है। पात्र की स्वच्छता ही अमृतमुखता है।

अमृत-जिज्ञासु व्यक्ति मन्दिर मे हाथ भी इतने पवित्र लेकर जाये, ताकि उन हाथो के द्वारा परमात्मा का चरण-स्पर्श कर सके। जिह्वा इतनी पवित्र बनाकर जायें ताकि उस जिह्वा के द्वारा परमात्मा के आदर्श गुणो का रसास्वादन कर सके। परमात्मा का जो आदर्श प्रकाश है, उसे वह प्राप्त कर सके। वह हाथ किस काम का जिसने भगवान् के चरणो मे पुष्पाजलि अर्पित न की हो। वह जीभ भी अर्थहीन है, जिसने भगवत्ता के रस का आस्वादन न किया हो। वह कदम भी बेकार है जो भगवान् के मन्दिर की ओर न बढे हो। वह नेत्र ज्योतिहीन है, जिसने परमात्मा का पावन दर्शन न किया हो। 'अह ब्रह्मास्मि' को प्रगट करने का यही सूत्र है। कबीर कितनी अलमस्ती मे कहता है—

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मे गई, मैं भी ह्वै गई लाल॥

आज से अब हम मन्दिर जाएँ, गुरु-चरणों मे जाएँ, साधना शुरु करें, नये ढग से। योग्य और स्वच्छ पात्र बनकर जाएँ तभी साधना के शिखर पर आरोहण होगा। एवरेस्ट की चोटी पर पहुचने के लिए निर्भार हो जाएँ।

साधना के पथ पर फिर से कदम बढाइये।
अपने को पहले बिल्कुल खाली बनाइये।
कूप ऊपर का पानी लेना न चाहता,
अन्दर के झरनों से ही वह भर जाता।
शून्य करने का कुछ-कुछ श्रम तो उठाइये।
अपने को बिल्कुल खाली बनाइये॥
कितने भरे हैं अन्दर, कुछ न समाता,
अद्‌भुत कुछ घटनेवाला, घटने न पाता।
व्यर्थ के विकल्पों मे गोते न खाइये।
अपने को पहले बिल्कुल खाली बनाइये॥
शक्कर भरी हो चाहे धूली भरी हो,
सोना की साकल हो या लोहा जडी हो।
शुभाशुभ दोनो त्याज्य, शुद्ध बन जाइये।
अपने को पहले बिल्कुल खाली बनाइये॥
साधना के पथ पर फिर से कदम बढ़ाइये।
अपने को पहले बिल्कुल खाली बनाइये। ●

मोक्ष : आज भी सम्भव

प्रवचन-स्थल

जैन भवन, कलकत्ता

प्रवचन-समय

२-८-१९८५

प्रश्न है जैन धर्म के अनुसार इस आरे मे मोक्ष नही हो सकता, जब कि आप मोक्ष-प्राप्ति के लिए बार-वार जोर देते हैं। जब मोक्ष अभी नही मिल सकता तो उसके लिए क्यो तो आप प्रेरणा देते हैं और क्यो ही हम प्रयास करें? जिस आरे मे मोक्ष मिलेगा, उस समय ही इसके लिए प्रेरणा-प्रयास करना क्या उचित नही होगा ?

प्रश्न वहुत सुन्दर है, साथ ही साथ महत्त्वपूर्ण भी है। इसे गहराई से समझना होगा, वरना चूक जायेंगे। गहराई मे जानेवाले को सच्चे मोती मिलेंगे। जो ऊपर-ऊपर वाहर-वाहर रहेगा, उसे समुद्र का खारा जल मिलेगा। अतः गहराई में पैठें और समझें।

सर्वप्रथम मोक्ष को ध्यान पूर्वक समझें। मोक्ष शब्द सुनने मात्र से आत्मा मे तरंगें उठी। वडा अनूठा शब्द है यह। सदियो-सदियो तक किये गये चिन्तन और साधना का परिणाम है यह मोक्ष। मोक्ष एक प्रत्यय है। मोक्ष की अवधारणा केवल भारत मे मिलेगी। स्वर्ग, नर्क की मान्यता सभी देशो मे मिलेगी। परन्तु मोक्ष भारतीय मनीषियो की देन है। स्वर्ग मे सुख है, पर वह खाओ, पियो, मौज उडाओ की भूमिका है। एक तरह से भौतिक स्तर है वह। नरक मे दुःख है। मोक्ष स्वर्ग और नर्क—दोनो के पार है। सवसे उत्कृष्ट स्थिति है यह जीव की। वहाँ न सुख है, न दु.ख। वह तो चैतन्य की विशुद्ध दशा का नाम है। वहाँ न जन्म हैं, न मृत्यु। वहाँ तो मृत्यु रहित जीवन है, जागृति है, चेतना है। कर्त्ता समाप्त हो जाता है, ज्ञाता रह जाता है। भोक्ता खो जाता है, द्रष्टा प्रत्यक्ष हो जाता है। शाश्वत शान्ति और चिर सौख्य का आस्वादन ही वहाँ शेष रहता है।

वस्तुत. आत्म-पूर्णता ही मोक्ष है। क्योकि जव तक अपूर्णता है, तव तक मोक्ष सम्भव नही है। आत्म-ऊर्जा जव तक भिन्न-भिन्न घटको मे, विकल्पो, तृष्णाओ, कामनाओ और वासनाओ में वटी रहेगी, तव तक वह अपनी पूर्णता को उपलब्ध नही कर पायेगी। इस पूर्णता के लिए ही ज्ञानात्मक, अनुभूत्यात्मक और सकल्पात्मक प्रयास करना होता है। इन तीनो का पूर्ण रूप ही आत्म पूर्णता है। और, आत्म-पूर्णता ही मोक्ष है। अपूर्णता प्यास है, जिसे पूर्णता के पानी से शान्त करना है, उस प्यास को वुझाना है। काण्ट ने नैतिक पूर्णता के लिए आत्म-पूर्णता यानी अनन्त तक प्रगति अनिवार्य मानी है।

हमे अनुभव होता है अपनी अपूर्णता का। जव अनुभव होता है तो पूर्णता का भी अनुभव होना चाहिये। ध्यान पूर्वक विचार करें तो पायेंगे कि उस अपूर्णता को आत्मा भी पूर्ण ही है। पूर्णता सत्यत आत्मा की क्षमता है कैपिसिटी है। यह क्षमता

ही मोक्ष की योग्यता है, एबिलिटी है। व्यक्ति के व्यक्तित्व की पूर्णता, सत् के सत्ता की पूर्णता ही आत्मपूर्णता है, मोक्ष है।

हाँ ! इस सम्वन्ध मे एक बात और जानने लायक है। और, वह यह कि आत्मपूर्णता मे युक्तता किसी से नही होती। इसमे तो खोना है, रिक्त एव शून्य करना है, जीवन के पात्र को, आत्मा को। 'जो घर फूके आपना, चले हमारे साथ।' कबीर ने कहा है कि छोड दो सबको। रिक्त हो जाओ तुम तो। यह पूर्ण रिक्तता ही पूर्णता बनकर उभरती है। हकीकत में लोग 'पर' से जुडकर 'स्व' को खो देते हैं, यह भौतिकी है। अध्यात्म के अनुष्ठान में तो पर को खोकर स्व को पाना है। स्वार्थ सिद्ध करना है। मतलब स्वस्थ होना है। जैसे-जैसे हम पर से मुक्ति पाएँगे, पर यानी चाह, वासना, अहकार, विकल्प, राग-द्वेष। इनसे जैसे-जैसे हम छुटकारा पाएँगे, स्व के हम उतने ही समीप से समीपतम आते जाएँगे। भार जैसे-जैसे कम होगा, जैसे-जैसे निर्भार होगे, हम ऊपर उभरते जाएँगे, डूबने से बचेंगे।

आ जाए
'पर' से 'स्व'
मिल जाए
'स्व' मे 'स्व'
सदा-सदा के लिए
प्रकट होगी
आत्म-शक्ति की
फिर निर्धूम अनन्य ज्योति।

यह स्वारोहण है और इसी से मोक्ष सधेगा। सच पूछिये तो नैतिक जीवन का परम साध्य यह स्व की उपलब्धि ही है, नैतिकता का परमश्रेय मोक्ष की प्राप्ति ही है। इस मोक्ष को नाम हम कुछ भी दें। चाहे महाजीवन कहे, चाहे निर्वाण कहें, परमात्मा, मोक्ष या मुक्ति कहे। भिन्नता नामो की है। यह तो अलग-अलग दार्शनिको की अलग-अलग शब्दावली है। जैसे दूध एक पर नाम अनेक : क्षीर, खीरो, दूधो, पालू, मिल्क। यह भाषा भेद है। वैसे ही मोक्ष को भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं। मगर तत्त्व मे भिन्नता नही।

प्रश्न जैन का है। अतः जहाँ तक जैन का प्रश्न है, जैन दर्शन मे मोक्ष के लिए मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है। जैन दर्शन मे मोक्ष के दो रूप माने हैं। एक तो है भावमोक्ष और एक है द्रव्य मोक्ष। इनमे राग-द्वेष का मतलब है राग-द्वेष से मुक्ति और द्रव्य-मोक्ष का मतलब है निर्वाण पाना, मरणोत्तर मुक्ति की प्राप्ति। इसके लिए दो प्रतीक हैं, अरिहन्त और सिद्ध। अरिहन्त-दशा

भावमोक्ष है और सिद्धदशा द्रव्य मोक्ष है। यदि हिन्दू शास्त्रो की भाषा मे कहू तो, भाव मोक्ष है जीवन-मुक्ति और द्रव्य मोक्ष है विदेह-मुक्ति।

मोक्ष, वस मोक्ष है। उसको किसी उपमा के द्वारा नही समझाया जा सकता। कारण, मोक्ष अनुपम है। मोक्ष वस्तुत अनिर्वचनीय है। भगवान महावीर ने आचारागसूत्र मे यही बात कही है कि 'वहाँ से सारे स्वर लौट आते हैं।' वहाँ तर्क की गु जाइश नही है। वह बुद्धि का विषय नही है। वहाँ तक तो आत्मा की पहुच है। और, आत्मा उसे अनुभव कर सकती है, व्यक्त नही। नारदसूत्र मे नारद ने इसे कहा है गू गे का गुड। गू गा जैसे गुड का रसास्वादन कर सकता है, उसका स्वाद कैसा है यह नही वता सकता, वैसे ही आत्मा मोक्षानुभव कर सकती है, उसे समझाना कहना शक्य नही है। मोक्ष कोई वस्तु तो है नही, जो उसे दिखाया जा सके समझाया जा सके, छूआ जा सके। सचमुच, मोक्ष अनुपम है, अरूपी है, और सत्तावान है। मैं तो कहूगा कि मोक्ष चेतना का समत्व है, परम शान्ति है, परम आनन्द है, आत्म पूर्णता है, परम पद है, अमृत पद है।

अव यह समझें कि इस समय मोक्ष हो सकता है या नही। प्रश्न था कि जैनधर्म के अनुसार इस आरे मे मोक्ष नही हो सकता।

इस आरे मे इसका मायना है पचम आरे मे। यानी इस समय मोक्ष होना असम्भव है—यह वात जैनाचार्यों ने कही। परवर्ती जैनाचार्यों ने। मैं इस प्रश्न को विचारणीय कह दू तो ज्यादा ठीक रहेगा। वास्तव मे हमे सोचना है कि क्या इस समय मोक्ष नही हो सकता ? यह हमारी प्राचीन परम्परा रही है, यह कहने की कि जो अतीत मे सम्भव था, वह वर्तमान मे असम्भव है। जो-जो बातें भूतकाल मे हो गयी, उन्हे हम कहते हैं कि वर्तमान काल मे नही होगी। अतीत को किसी ने देखा नही है, अनदेखा ही कहते हैं। अतीत के वारे मे सुना तो वहुत ज्यादा है कि वडा भव्य था अतीत काल, वडा सुनहरा था भूतकाल। अतीत की भव्यता के पीछे हम वर्तमान की दिव्यता को हटा देते हैं। अतीत काल भव्य रहा होगा, लेकिन वर्तमान काल भव्य नही है, यह वात कहना कोई वैज्ञानिक तथ्यपूर्ण नही है। जो चीज भूत काल मे सम्भव थी, वह वर्तमान मे भी सम्भव है और भविष्यकाल मे भी सम्भव रहेगी। कोई भी चीज ऐसी नही है कि जिसका अतीत तो दिव्य रहे और वर्तमान भव्य न वने। किन्तु न केवल जैनधर्म मे, अपितु ससार के प्राय सभी धर्मों मे यह वात कही गयी कि जो पहले हो गया, वह अव नही होगा। मोक्ष, जो पहले चले गये वे चले गये। अव मोक्ष नही जा सकते।

लेकिन थोडा हम दिमागी कसरत करके सोचें कि जो चीज पहले सम्भव थी, अव असम्भव क्यो है ? हाँ! यह जरूर हो सकता है कि जो चीजें पहले असम्भव थी, वे अव सम्भव होने लग गयी हैं। आज का युग विज्ञान का युग है। और,

विज्ञान का काम ही यही है कि वह हर असम्भव को सम्भव बनाये । जो चीज नही हो सकती है, वह हो । बस, विज्ञान का काम इतना ही है । और, विज्ञान का अर्थ तथा उसकी परिभाषा भी यही है । जहाँ भी सत्य की सम्भावना है, कुछ होने की सम्भावना है, वहाँ-वहाँ विज्ञान पहुँचने का प्रयास करता है । हर कोने-कातर मे विज्ञान कार्य करता है । विज्ञान बुद्धि के प्रयोग की उपज है, प्रत्यक्ष प्रमाण है। सत्य तो शाश्वत है । विज्ञान उस पर आये आवरणो और पर्दों को हटाता है। अनावरण करता है । यों समझिये कि स्रोत पर से चट्टानो को हटाने का कार्य विज्ञान करता है। हां ! यह वात अलग है कि इसमे समय अल्प भी लग सकता है और ज्यादा भी।

जगदीशचन्द्र वसु ने खोज की कि वनस्पति मे जीव है । इस तथ्य की सिद्धि के लिए उन्होने एक सार्वजनिक सभा मे वैज्ञानिक तथ्य दिखाये थे । एक आदमी ने कहा कि यदि वनस्पति में जीव है तब तो यह जहर खिलाने से मर जाना चाहिये। वसु ने कहा, निश्चित मरेगा । जहर दिया गया, पर वनस्पति को कुछ नही हुआ। लोग वसु की हँसी उडाने लगे । वसु ने जहर की बोटल तत्काल पी ली, पर आश्चर्य कि वसु के भी कुछ असर नही हुआ । आखिर वसु ने बताया, कि लोगो ने धोखा किया है। यह जहर नही है, कोरा पानी है ।

बडा साहस होता है, वैज्ञानिको मे । जो चीज वे कर सकते हैं, वह सार्वजनिक है । जो चीज नही हो सकती, उसको भी वे कर दिखाते हैं । विजली, तार-वेतार, टेलीविजन, राकेट—ये सब असम्भव से असम्भवतम कार्य समझिये, पर सब आज सम्भव हो गये हैं । इसलिए आज यह कहना कि अमुक चीज अमुमकिन है, एक तरह से मानवीय ऊर्जा, मानवीय पुरुषार्थ और प्रगतिशील विज्ञान का तिरस्कार है। इससे हमारी आत्म-शक्ति की प्रतिष्ठा भग होती है ।

मोक्ष सघन ऊर्जा की यात्रा है । विज्ञान-प्रभावित धर्म और जन दोनो मोक्ष को आज भी होना मान सकते हैं । इसलिए मैं मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्न भी करता हूँ, प्रेरणा भी देता हूँ । मुझे विश्वास है कि मुझे मोक्ष मिलेगा । मेरी मृत्यु जो कि हृदय-गति रुकने से होगी, मोक्ष के फूल अवश्य खिलाएगी । इसलिए मोक्ष-प्राप्ति के लिए वार-वार जोर देता हूँ और देना भी चाहिए। क्योकि मोक्ष है और आत्म-दृष्टि उपलब्ध हो जाये तो मोक्ष मिलेगा भी । यह नही हो सकता कि बौद्ध कह दे कि केवल गौतम/सिद्धार्थ ही निर्वाण को पा सकते हैं । वे ही अन्तिम निर्वाणी हुए हैं। जैन कह दें कि महावीर स्वामी या जम्बूस्वामी तक ही मोक्ष हुआ था। अथवा ईसाई कह दे कि ईसा मसीह ही परमात्मा के इकलौते पुत्र हैं, तो यह बात ज्यादा तथ्यपूर्ण नही लगेगी ।

कितनी हास्यभरी बात है यह कि आज मोक्ष नही हो सकता। अरे ! पहले वन्धन होता था और आज भी वन्धन होता है । पहले मोक्ष होता था, तो आज मोक्ष

क्यो नही होता है ? तब तो आज बन्धन भी नही होना चाहिये और यदि बन्धन है तो मोक्ष भी होना चाहिए। जब जन्म है तो मृत्यु भी होगी। खिलना है तो मुरझाना भी होगा। सयोग है तो वियोग भी होगा। उदय है तो अस्त भी होगा। बन्धन है तो मोक्ष भी होगा। यदि हम भविष्य के लिए मोक्ष को रखेंगे तो मोक्ष कभी भी नही मिल सकता। जहाँ-जहाँ पर मोक्ष को भविष्य के लिए रखा जाता है, वहाँ-वहाँ पर बन्धन ही बन्धन होता है, न कि मोक्ष। भविष्य किसने देखा है, कल किसका आया है। हर आज अतीत बन जाता है और हर कल आज। पर यह जरूरी नही कि हर कल आज बनेगा ही। हो सकता है कल ही काल बनकर उपस्थित हो जाए।

आचार्य कवीन्द्रसूरि का एक पद्य है कि

काल-काल क्यों करता है रे
काल तुझे खा जायेगा।
बीत गया अगर काल बावरे,
बीता काल न आयेगा॥

कल का भरोसा नही। मोक्ष होगा, आज, अभी, यही। यही वह जीवन है जिसका परमसाध्य मोक्ष है। केवल भूतकाल मे ही मोक्ष था और आज नही है, वैज्ञानिक एव तार्किक बुद्धिवालो को यही सबसे बडी विसगतिपूर्ण बात लगेगी और इसीलिए वह इसे स्वीकार भी नही करेगा।

जरा मुसलमान मोलवी लोगो को देखो। वे कहते हैं कि मोहम्मद साहब अन्तिम पैगम्बर हुए। उनके बाद इस युग मे कोई पैगम्बर नही हो सकता। उनकी कोटि का आदमी अब नहीं हो सकता। मुहम्मद की टक्कर का आदमी कभी पैदा हो सकता है—यह बात नामुमकिन है। मुहम्मद ही आखिरी पैगम्बर हुए। आज यदि दूसरा पैगम्बर हो जाए तो मुसलमानो मे बडी क्रान्ति मच जाए। लेकिन धर्म की पाबन्दी के लिए यह बात बना दी गयी कि अब दूसरा पैगम्बर नही होगा। जो होना था वह हो गया। वर्तमान या भविष्य काल मे नही होगा। फिर नया पैगम्बर हो गया तो मुहम्मद को लोग बिसरा देंगे। उनकी पूछ कम हो जायेगी। इसलिए कह दिया कि मुहम्मद के बाद अब अन्य पैगम्बर नही होगे। यह कितनी मजे की बात है कि मुसलमानो मे मुहम्मद से पहले तेवीस पैगम्बर हो गये, इससे भी ज्यादा सख्या मिलती है पर कहते हैं अब नही होंगे। यद्यपि अकबर आदि ने प्रयास किया, किन्तु उसका प्रयास मात्र एक महत्वाकाक्षा थी। इसलिए उसका प्रयास एक खोखली राजनीति बनकर रह गयी।

बौद्धो के सम्बन्ध मे भी यही बात है। बौद्धो ने भी यही बात कही कि गौतम ही अन्तिम बुद्ध हैं। यह वस्तुत श्रद्धा का विषय था। गौतम से पहले अनेक बुद्ध हुए, पिटको मे सात बुद्ध होने का उल्लेख है और परवर्ती बौद्धागमो मे चौबीस

बुद्ध होना वताया है, पर गौतम को, सिद्धार्थ को महत्ता देने के लिए पूर्व की उपेक्षा करनी पडी और भविष्य मे बुद्धत्व का द्वार वन्द कर दिया और कह दिया कि गौतम अन्तिम बुद्ध हैं। जो बुद्धत्व गौतम बुद्ध से पहले हर एक के लिए सुलभ था, लाखो वर्षो तक सुलभ रहा, गौतम के वाद बुद्धत्व के फूल मुरझा गये। और कहते हैं कि ऐसे मुरझाए, कि फिर दूसरा फूल खिला ही नही। यदि उस फूल का वीज ही नष्ट हो गया हो तव तो वात अलग है। पर फिर तो ये फूल कभी खिलेंगे ही नहीं। बुद्धत्व अन्धकाराच्छन्न मार्ग मे खो जायेगा। और यदि वीज नष्ट नही हुआ तो फिर जरूर खिलेगा। अपेक्षा है उसको सीचने की।

जैनी कहते हैं कि इस चालू आरे मे मोक्ष नही हो सकता। इस आरे मे तीर्थ कर नही हो सकता। कितनी वेढवी वात है यह। अपने हाथो से अपने पैर पर कुल्हाडी चलाने जैसी वात है। एक ओर तो जैनदर्शन कहता है कि हर इन्सान ईश्वर वन सकता है। अपने राग-द्वेष रूपी शत्रुओ को परास्त कर वह जव चाहे तव अपना विकास कर सकता है। विकास कर सकता है कहना ठीक नही, उसका विकास हो जाता है अपने आप। इसी के विपरीत दूसरी ओर यह कहा जाता है कि मोक्ष, तीर्थंकरत्व इस युग मे, इस आरे में नही होगा। मैं पूछता हूँ कि यदि इस आरे मे मोक्ष का अमृत-पान नहीं होगा, तो क्या यह जीवन जहर भरा ही रहेगा। तव तो यह जीवन कोई जीवन थोडे ही होगा, उल्टा अभिशाप वन जायेगा। इस रहस्य से जो अनभिज्ञ हैं, वे कहते हैं कि महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थङ्कर हुए, जम्बू अन्तिम मोक्षार्थी हुए। यह तो जैनाचार्यों की कृपा ही समझूंगा कि उन्होंने मोक्ष का द्वार महावीर के वाद भी खुला रखा। वन्द किया जम्बू के वाद। 'जम्बू जड गया ताला रे'। ताले वन्द कर दिये, मोक्ष के। पांचवां और छठा आरा समाप्त होगा। यानी कि इक्कीस और इक्कीस वयालीस हजार वर्ष के वाद फिर कालचक्र का दूसरा आधा चक्र प्रवावित होगा। उत्सर्पिणी चक्र के तीसरे-चौथे आरे मे फिर मोक्ष और तीर्थङ्कर होगे।

ईसाई कहते हैं कि ईसामसीह, वस वे ही ऐसे व्यक्ति थे, जिनको परमात्मा ने स्वीकार किया। ईसा ही ईश्वर के एकमात्र वेटे थे। जव कि ईसा स्वय वाइवल मे स्थान-स्थान पर कहते हैं कि जो मेरा परमपिता है, वह सवका पिता है। किसी एक का अधिकार या वपौती नही है उस पर। वह सवका पिता है, सव उसके वेटे हैं। लेकिन ईसाई पादरी यही कहते हैं कि ईसाममीह ही ईश्वर के एक मात्र वेटे हुए। जव ईसा ही एकमात्र इकलौते वेटे हुए तो ईसाई धर्म के अनुसार यह सारा अस्तित्व फिर क्या है ? जैसे परमात्मा ने ईसा को पैदा किया, वैसे ही दूसरी जन जाति को भी पैदा किया। तो वह पिता ईसा के भी हैं और सवके हैं। लेकिन कहा यही जाता है कि ईसा ही अन्तिम मसीहा हुए। उनके वाद कोई हो ही नहीं सकता।

ईसा यद्यपि ईश्वर-पुत्र थे, किन्तु ईसाई तो ईसा को ही ईश्वर मानने लग गये हैं। वे ईश्वर को भूले जा रहे हैं और जिधर अपने को नया दार्शनिक कहे, तो लोग उसे सुख से जीने भी नही देंगे। रजनीश वडा जवर्दस्त व्यक्ति है, पर देखते हैं आप सभी कि लोगो ने रजनीश का जीना हराम कर रखा है। हां! जैनी लोग रजनीश को कभी वुरा नहीं कहेगे। क्यो कि रजनीश की जैन धर्म को अनुपम देन है। जन्म से वह जैन है पर वह निष्पक्ष आचार्य है। भगवान महावीर की भाषा मे कहू तो वह सच्चे अनेकान्तवादी हैं।

पर लोग नही मानते। कोई दूसरे महावीर हो सकते हैं, ईसा हो सकते हैं, राम हो सकते हैं—यह लोगो को जचता नही। दयानन्द, विवेकानन्द, रामकृष्ण, रामतीर्थ, राजचन्द्र, अरविन्द, आनन्द, वगैरह लोग ऐसे हैं, जिनके वारे मे मोक्ष-प्राप्ति की सम्भावना की जा सकती है।

इसीलिए मैं तो कहता हूँ कि ठीक है, उस समय मोक्ष ज्यादा सुलभ था, लेकिन आज असम्भव है यह वात कहना तो अधिक सगति पूर्ण नही होगा। आज भी मोक्ष मिल सकता है। यदि कहा जाए कि मोक्ष आज दुर्लभ हो गया है, तो कोई विरोध नही है। पर असम्भव है, इसमे विरोध है। अन्तर इतना ही है कि एक समय ऐसा आता है कि जव मोक्ष आसान हो जाता है और एक समय ऐसा होता है कि जव मोक्ष कठिनाई से होता है। महावीर के युग मे, गौतम वुद्ध के युग मे मोक्ष को पाना वहुत सरल था। कृष्ण के समय ईश्वर को पाना थोडा सरल था। आज तो कृष्ण जैसे, महावीर जैसे, वुद्ध जैसे व्यक्ति कम है, जो कि सच्चे मोक्ष का मार्ग वता दें। साथ ही अर्जुन, गणधर गौतम, देखो, उधर ईसा का ही प्रचार-प्रसार हो रहा है। जैसे यहूदी कहते थे कि ईसा अपने को ईश्वर-पुत्र कहता है। इसीलिए यह अपराधी है और उन्होने दण्ड भी दिया, क्रास पर चढा दिया। वैसे ही यदि कोई आज अपने को ईश्वर-पुत्र कहता है, ईसा की तरह तो शायद ईसाई उसकी वह हालत कर देगा, जो ईसा की हुई थी।

वास्तविकता तो यह है कि आज यदि कोई दूसरा ईसा, यदि कोई दूसरा मुहम्मद अथवा दूसरा कोई परम ज्ञानी हो जाए तो वह अपना धर्म अपना मत नया वना लेगा। ईसा नये महापुरुष हुए। उन्होंने अपना धर्म अलग वनाया। जरथुस्त ने अपना मत चलाया। अरस्तु ने अपने गुरु से हटकर वातें वताई। पायथागोरस नये सशोधक हुए।

मगर भारतीय मनीषियो मे यह वात नही मिलेगी। ये लोग अपने पूर्वजो और वुजुर्ग लोगो से न तो आगे वढना चाहते हैं और न उनके वरावर अपना सिंहासन लगाना उचित समझते हैं। यह भारतीय आदर्श है। यही कारण है कि भारत मे अनेक महान् से महान् चिन्तक हुए, लेकिन फिर भी भारत मे दर्शन कम हैं। दर्शनो की गणना मे केवल षडदर्शन ही है। विदेशो मे, पाश्चात्य मे जितने दार्शनिक उतने

दर्शन। वे लकीर के फकीर नही। महावीर ने जो हर इन्सान मे ईश्वरत्व की सम्भावना वताई वह पाश्चात्य मे दर्शन के सम्वन्ध मे हैं। कितने दार्शनिक हुए हैं पश्चिम मे। ब्रेडले, डेविड ह्यूम, हेडफील्ड, काट, गेटे,—ये सव वर्तमान उपज हैं। वहाँ पर हर व्यक्ति यदि क्षमता हो तो दार्शनिक कह सकता है अपने को। पर भारत मे कोई और आनन्द जैसे लोग भी तो कम है, जिन्हें सच्चा मार्ग दर्शाया जा सके।

समय प्रतिकूल भी होता है, अनुकूल भी होता है। समय, क्षत्र, भाव प्रतिकूल और अनुकूल दोनो होते हैं। अवसर कभी अच्छा मिलता है और कभी अच्छा नही मिलता। लेकिन इसका मतलव यह नही कि अव जिन्दगी मे दूसरा अवसर फिर कभी मिलेगा ही नही। मिलेगा, जरूर मिलेगा। और यदि नही भी मिलता है तो अपना क्या जाता है? यदि हम मोक्ष के लिए प्रयास करते हैं, यह सोचकर कि मुझे इसी जीवन मे इसी जन्म मे मोक्ष पाना है और हम प्रयास करते हैं, तथापि यदि मोक्ष नही मिलता तो अपने को कोई घाटा तो नही है।

कुआ खोदते हैं पानी को पाने के लिए। यदि पानी नही निकलता है तो घाटा तो कुछ नही हुआ। कम से कम शारीरिक परिश्रम तो हो गया। व्यायाम तो हो गया। हाथ-पैर तो कम से कम मजवूत हो गये। मोक्ष के लिए प्रयास किया। कोई वात नही, प्रयास पूर्ण नही था, मोक्ष नही मिलता तो कम से कम स्वर्ग तो मिल जायेगा। वह तो कही दूर नही जायेगा। कुछ न कुछ तो मिलेगा। मिलेगा जरूर। अभी मिलेगा। यही मिलेगा। वाद मे कही और कभी भी नहीं मिलेगा जो भी मिलना है, अभी मिल सकता है और यही मिल सकता है।

मैंने सुना है, एक ब्राह्मण पण्डित भोजन करने के लिए तैयार हुआ। अचानक उसे याद आया कि वैल को खेत से लाना है। वह खेत की ओर चल पडा, साथ मे भोजन लिया। सोचा कि आते समय भोजन कर लूँगा। वैल पर वैठ गया और रवाना हो गया। भोजन कर रहा है, वैल पर वैठे-वैठे ही। रास्ते चलते एक किसान ने पूछा कि अरे! तुम ब्राह्मण हो। भोजन करने के लिए पहले गोवर का माडला वनाना पडता है। उस पर रखकर तुम भोजन करते हो। लेकिन इस वैल पर वैठे-वैठे विना माडले के कैसे भोजन कर रहे हो? उसने कहा भाई! गोवर वैल के भीतर है, कही वाहर नही। तो वाहर न वनाकर मैंने अन्दर ही गोवर का माडला वनाया हुआ है। इसलिए कोई दिक्कत की वात नही है। जव भोजन करना ही है फिर वह मांडला वनाने की क्या जरूरत? वाहर से दिखाने की कोई आवश्यकता नही है, गोवर तो वैल के पेट मे ही है।

जव मोक्ष को पाना ही है तो फिर तत्पर क्यो नही हो जाते। गोवर का माडला वैल के पेट मे है या पीठ पर—इस झंझट मे क्यो पडते हो? तुम्हे भोजन से मतलव है या गोवर से? शुक्ति से मतलव है या मोती से? हमे मतलव है केवल मोक्ष से। समय से मतलव ही नही है कि अभी होगा या नही।

मोक्ष कभी समय के साथ बँधा हुआ नही है। मोक्ष का मतलब ही है स्वतन्त्रता। सब चीज से स्वतन्त्रता। समय से भी स्वतत्रता। मोक्ष कभी समय से बन्धा हुआ नही रह सकता। हम लोग मोक्ष को समय के साथ बांध लेते हैं। लोग कहते हैं, पचम आरा है, भ्रष्ट युग है, पतित युग है। ठीक है. बहुत कुछ कह दिया इस युग के बारे मे, लेकिन हम जिस युग मे पैदा हुए हैं, हमारे लिए तो यही सबसे बडा सतयुग है। रहा होगा किसी और के लिए प्राचीन काल मे सतयुग। लेकिन हम जिस युग मे पैदा हुए हैं, हमारे लिए तो वही सतयुग है। कोई दूसरा युग हमारे लिए नही आ सकता। तो हमे इस कलियुग को भी सतयुग बनाना है हमे इस कांटो भरे युग के पौधे पर भी गुलाब के फूल खिलाने है, तभी हमारी महत्ता बनेगी।

इसलिए मैं कहता हू मोक्ष अभी मिल जाएगा। यदि हम पूर्ण प्रयास करें तो इसी आरे मे मोक्ष मिल जाएगा। भविष्य के लिए हम मोक्ष को छोडते ही क्यो है ? भविष्य के लिए मोक्ष को छोडा तो बन्धन बना। मोक्ष हर समय हो सकता है। साधना भी हर समय हो सकती है। ये दोनो कालातीत हैं। यह अलग बात है कि एक समय ऐसा आता है कि जब मोक्ष की साधना सरलता से होती है और एक समय ऐसा होता है जब मोक्ष की साधना करने के लिए थोडी कठिनाई का सामना करना पडता है। पर मोक्ष इस समय नही हो सकता, मैं नही मानता। समय को हम मोक्ष के साथ कभी न बांधे। क्योकि इससे बहुत बडी क्षति होगी। आदमी के पुरुषार्थ को समन्वय मे लाना है, उचित समय आया हुआ है।

मोक्ष के लिए प्रयास और पुरुषार्थ करने के लिए मैं इसलिए कहता हू, क्योकि वह करने मे हम समर्थ हैं मैं यह नही कहता कि करो, बल्कि मैं तो यह कहता हूँ कि करना चाहिए। आप कर सकते हैं. आपके भीतर वह शक्ति है। मैं आत्मा की शक्ति को, आपके सामर्थ्य को पहचानता हू। इसीलिए मैं बार-बार जोर देता हू मोक्ष के लिए, मोक्ष-प्राप्ति हेतु प्रयास करने के लिए।

भाग्य-भरोसे मत रहो। भाग्य हमे मोक्ष दिलाएगा या नही दिलाएगा, पक्का नही, पर पुरुषार्थ अवश्य दिलाएगा। मैं पुरुषार्थवाद का समर्थक ज्यादा हू। भाग्य नियतिवाद का अग है। नियतिवाद के आधार पर सृष्टि केन्द्रित है, मगर मोक्ष पुरुषार्थवाद पर केन्द्रित है। महावीर ने पुरुषार्थ किया, बुद्ध ने भी पुरुषार्थ किया, ईसा ने भी पुरुषार्थ किया था, तब कही जाकर सर्वज्ञत्व का बुद्धत्वका ईश्वरत्व का झरना प्रवाहित हुआ था। भाग्य से, नियति से भोजन उपलब्ध हो सकता है, पर खाना स्वय को ही पडेगा, यह पुरुषार्थ तो करना ही पडेगा। भाग्य और पुरुषार्थ का समन्वय ही सिद्धि का सोपान है। जहाँ तक जैनो का प्रश्न है, महावीर पुरुषार्थवादी कहे जाएंगे। महावीर का विरोधी व्यक्ति था गोशालक। गोशालक नियतिवादी था। और जैन शास्त्र कहते हैं कि महावीर ने गोशालक के नियतिवाद का विरोध किया था।

हालांकि महावीर ने नियतिवाद को सर्वथा अस्वीकार नही किया था। खीर की हण्डी फूटने से पूर्व महावीर द्वारा गोशालक को यहबता देना कि हण्डी फूट जायेगी खीर पकने से पहले ही, तो यह घटना नियतिवाद समर्थक हो गयी। मुझे तो लगता है कि महावीर नियति और पुरुषार्थ के समन्वयकारक साधक थे।

यदि हम नियति को ही आधारभूत मानेंगे, तब तो कोई भी व्यक्ति मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करेगा ही नही। नियति के आदेशानुसार तो व्यक्ति का बन्धन और मोक्ष सब निश्चित है। बैठे रहो सब यही निठल्ले की तरह। सोये रहो आम के पेड नीचे, और यह माला फेरते रहो, कि भाग्य मे होगा, तो आम अपने आप मुह मे गिर जायेगा। वह कहानी सुनी होगी कि इसी मत का अनुयायी पेड के नीचे सोया रहा, पर उसे आम नही मिला। सोये-सोये जब नीद आ गई और वापस जब आंख खुली तो पाया कि मुह पर कुत्ता पेशाब कर रहा है।

वस्तुत. नियति के भरोसे आदमी परतन्त्र हो जाता है, और पुरुपार्थ के भरोसे स्वतन्त्र। मोक्ष उपलब्ध पुरुपार्थ से ही होगा। इस बात को भूल जाओ कि मोक्ष अभी होगा कि नही, पुरुषार्थ करते रहो मोक्ष के लिए पुरुषार्थ से मुह मत मोडो। यह तो अहोभाग्य समझिए कि आपको अवसर मिला है, मोक्ष पाने के लिए मानव-जन्म मिला है।

जैसे मानव जीवन कठिनाई से मिलता है, वैसे ही अवसर भी कम मिलते हैं। मोक्ष पाने के लिए मानव-जीवन का कीमती अवसर मिल गया है तो बाज की तरह टूट पड़ें उस कबूतर पर। अन्यथा बाद मे केवल पछतावा रहेगा। पर चिडिया खेत चुग गई तो बाद मे उसे उडाने से कोई लाभ नही। कृषि सूखने के बाद वर्षा होना जैसे निरर्थक है, वैसे ही अवसर खोने के बाद उसके लिए प्रायश्चित करना। जीवन की सासो के सग मरण भी लिपटा हुआ है। सासो का उपयोग जीते-जी हो सकता है, मरने के बाद नही। जीवन के अन्तिम परिणाम दो ही होते हैं। या तो मौत या मोक्ष दो ही चीज हो सकती है। यदि मोक्ष है ही नही, मौत ही है तो जीना बेकार है। पचास साल बाद मरें और आज मरें दोनो मे एक ही बात है। जीते इसलिए हैं ताकि पुरुपार्थ करके मोक्ष को पा सकें। मरना ही अन्तिम है और सब मरते ही गये हैं यह बात गलत है। मोक्ष आज किसी को नही मिल सकता तो पैदा होना भी कोई काम का नही है। मौत तो अन्तिम परिणाम है जीवन का। यदि हम इस जीवन मे अमरता को नही पा सकते—अरबो, खरबो, असख्य वर्षो के बाद पायेंगे, तो हमारा जीवन लेना यह हमारा मनुष्य जन्म, यह महिमा पूर्ण जीवन क्या उपयोगी हो पायेगा? नही। समय यही है मोक्ष को पाने का यही पायेंगे! अभी पायेंगे। मोक्ष पायेंगे ससार से और हम अभी ससार मे हैं। मोक्ष यानि मुक्ति/ससार से मोक्ष पाना है जीते जी, मरने के बाद कुछ नहीं बचेगा। राख और खाक ही बचेगा। जीते जी मोक्ष मिलेगा और

वह अभी और यही मिलेगा । अभी यानि जीते जी । जो जीते जी नही मिला वह कभी नही मिल सकता है । यही यानि इसी जीवन मे । अत: समय यही है कि हम मोक्ष पाने के लिए पुरुषार्थ करें ।

मैंने सुना है एक घर मे चार चोर घुस गये । घर मे दो भाई थे । एक सोया था आँगन मे और एक सोया था छत पर । आँगन मे सोया हुआ भाई जग गया चोर की आहट पाकर । आँगन वाले भाई ने सोचा कि हम तो हैं दो और चोर हैं चार । और, पता नही ये लोग अपने साथ क्या लाये हैं । हम कैसे सकेंगे इनके साथ ? बडा भाई छत पर सोया हुआ था । आवाज भी तो कैसे दे ? आखिर उसने अगड़ाई ली और आवाज लगाई कि—

नारायण भाई नारायण, हम गगा जी तो जायेंगे ।

चोरो ने देखा कि एक भाई जग गया है । चलो झट से एक कोने मे छिप जायें और देखें कि ये लोग क्या करते हैं । उसने फिर आवाज लगाई कि—

नारायण भाई नारायण हम गगाजी तो जाएँगे ।

ऊपर वाला भाई जग गया उसने सोचा कि गगा जाने की कोई बात ही नही थी । आखिर क्या बात है । वह फिर चिल्लाया कि—

नारायण भाई नारायण हम गगा जी तो जायेंगे ।

नारायण ने सोचा कि जरूर दाल मे कुछ न कुछ काला है । नारायण ने कहा कि—

हम गगाजी तो जायेंगे पर घर किसको सम्भलायेंगे ?

नीचे वाले भाई ने कहा—

चरखी बेची पूनी बेची, घर मे आग लगायेंगे ।

पर नारायण भाई गगा जी तो जायेंगे ।

बडे भाई ने सोचा कि वास्तव मे कुछ न कुछ रहस्यमय बात है । फिर उसने कहा कि—

हम गगा जी तो जायेंगे, पर मारग मे क्या खायेंगे ।

हरि, जो छोटा भाई था, उसने कहा कि

चोरी कर-कर खाएँगे, पर गगा जी तो जाएँगे ।

जब यह आवाज जोर से गूँजी कि चोरी कर-कर खाएँगे । तो अचानक देखा कि बाहर से एक आवाज आयी कि—

चोरी कर-कर खाएँगे तो जूता फडा-फड पायेंगे ।

बात सही थी कि यदि चोरी करेंगे तो जूते भी पडेंगे ।

अरे ! कौन है यह कमीना, जो जूता मारेगा हमे ।

बोला, तेरा बाप है कोतवाल । कहा, हमको क्या जूता मारेगा, भीतर आ और देख, तेरे बाप को मार जूते । जो कि मेरे घर मे आकर बैठे हुए हैं । कोतवाल

ने कहा—वात क्यों है। दोनो भाई वोले—भीतर आओ। दोनो जग गये सारा मुहल्ला जग गया। कोतवाल भी पहुँच गया कहा ये छिपे हैं तेरे चोर। ये चोरी करने आये हैं। जूते देने हैं तो इनको दो।

समय पर यदि ये दोनो इस तरह का वार्तालाप नही करते तो शायद इनका सारा धन चला जाता। हम भी यदि अभी और यही साधना करने के लिए, मोक्ष पाने के लिए, प्रयास नही करेंगे तो फिर कव पायेंगे। जीवन को हम ऐसे ही खो देगें। मनुष्य-जीवन, जिसको पाने के लिए हमे जन्मो-जन्मो तक साधना और पुण्य करना पड़ा, उसको पाने के वाद भी यदि मोक्ष नही मिलता तो मनुष्य जन्म पाना वेकार होगा। फिर तो मनुष्य जन्म पाया कि पशु-जन्म पाया दोनो मे कोई भेद नही होगा। मोक्ष पाने के लिए ही तो मनुष्य का जन्म पाया। देव थे भोगो मे रमे। वहाँ लगा, मोक्ष यहाँ नही मिल सकता। तिर्यन्च मे थे, तो भी लगा मोक्ष यहाँ नही मिल सकता। नर्क में थे—वहाँ भी लगा कि यहाँ मोक्ष नही मिल सकता। तो आखिर कौन सा जीवन ऐसा है जिसको पाने के वाद मोक्ष मिल जाए। न स्वर्ग रहे, न नर्क रहे, न तिर्यन्च रहे। कुछ भी न वचे, मोक्ष मिल जाए अभी और यही। आखिर यही एक जन्म ऐसा सावित हुआ कि जिसमें मोक्ष को पाया जा सकता है।

यदि हम समय के आधार पर मोक्ष और वधन की तुलना करेंगे तो जव महावीर स्वामी पैदा हुए, जव राम और कृष्ण हुए, जव ऋषभदेव अथवा तीर्थङ्कर हुए तव भी ऐसा तो नही हुआ कि सारे के सारे मोक्ष चले गये। मानलिया जाय कि उस समय अच्छा था। आरा अच्छा था। तभी लोग मोक्ष नही गये तो समय के आधार पर आदमी कभी मोक्ष मे थोड़े ही जाता है। उस समय भी वहुत लोग ऐसे थे जो महावीर स्वामी को तीर्थङ्कर के रूप में स्वीकार नही करते थे। वुद्ध को वुद्ध नहीं कहते थे। वौद्ध लोग राम, कृष्ण और महावीर की निन्दा करते ये लोग और किसी की निन्दा करते होगे।

तो उस समय, समय तो अच्छा था लेकिन समय अच्छा होते हुए भी सव लोग मोक्ष को न पा सके। जव समय अच्छा होते हुए भी सव लोग मोक्ष को न पा सके, तो आज समय अच्छा नही है लेकिन इसका मतलव यह नही है कि आज कोई भी व्यक्ति मोक्ष नही पा सकता। मोक्ष को पाया जा सकता है। यह हमारे पुरुपार्थ और प्रयास पर निर्भर होता है। हम अपने जीवन के समय का भरपूर उपयोग करें मोक्ष के लिए। समय का हर क्षण स्वर्णकण की तरह कीमती है। समय ही जीवन है। जीवन का निर्माण समय से ही हुआ है। जैसे-जैसे समय वीत रहा है जीवन छोटा होता जा रहा है। उदित सूर्य पश्चिम की ओर वढ रहा है। हमे सूर्यास्त से पहले मोक्ष की अदृश्यनिधि को पा लेना है। ●